गृहस्थ में प्रवेश से पूर्व उसकी जिम्मेदारी समझें

– श्रीराम शर्मा आचार्य

गृहस्थ में प्रवेश से पूर्व उसकी जिम्मेदारी समझें

लेखक

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१३ मूल्य : १०.०० रुपये

वैवाहिक जीवन मात्र सुख की सेज नहीं, वह काँटों का पथ भी है। उसमें सुख-दुःख की धूप-छाँह चलती ही रहती है। ऐसे समय पति-पत्नी के लिए परीक्षा का अवसर होते हैं। उनकी कल्पना विवाह के पहले ही कर लेना और उनसे निपटने की मानसिक तैयारी कर लेना ठीक रहता है।

ISBN
81-89309-04-8

गृहस्थ जीवन के लिए पूर्व तैयारी आवश्यक

पाश्चात्य देशों में विवाह के पूर्व ही युवक--युवतियों को यौन विषयक जानकारी दी जानी आवश्यक समझी जाती है। हमारे यहाँ इस विषय को गोपनीय मानकर बच्चों को नहीं बताया जाता। यह कहना कि बच्चों के वयस्क होते–होते उन्हें यौन विषयक जानकारी दे देनी आवश्यक होती है। उचित मानें भी तो भी यह मत एकाङ्गी ही ठहरता है । यौन विषयक जानकारी युवक--युवतियों के लिए उतनी आवश्यक नहीं है जितनी कि उन्हें विवाह के पूर्व वैवाहिक दायित्वों, विवाह की महत्ता और उसकी सफलता के तथ्यों का ज्ञान कराना आवश्यक है। इनका समुचित ज्ञान न होने के कारण या तो वे विवाहोत्तर जीवन की ऐसी काल्पनिक तस्वीर अपने मन–मस्तिष्क में लेकर चलते हैं कि जीवन के नग्न यथार्थ से टकरा कर जब वह टूटती है तो वे स्वयं भी बहुत कुछ टूट जाते हैं। ऐसी काल्पनिक तस्वीर वे न भी बनाएँ तो भी वे शारीरिक व मानसिक तौर से उन बातों के लिए तैयार नहीं रह पाते जो उनके सामने आती हैं। विवाह जैसे महत्वपूर्ण दायित्व और व्यवस्था का न स्वयं पूरा लाभ उठा सकते हैं न समाज को और परिवार को ही उसका लाभ दे सकते हैं ।

आज तक अधिकांश माता–पिता विवाह को अनिवार्य तो मानते हैं, लड़के–लड़कियों के हाथ पीले करके गंगा नहाने की बात तो करते हैं, किन्तु उनका यह गंगा नहाना कितना अधूरा रहता है जब बच्चे विवाहोत्तर जीवन के भार को उठा पाने में असमर्थ रहते हैं या बेगार की तरह गृहस्थी की गाड़ी खींचते रहते हैं । विवाह की अनिवार्यता को स्वीकारने के साथ ही उसकी सफलता के लिए बच्चों को शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक रूप से तैयार व समर्थ बनाना भी उतना ही महत्व रखता है, जितना कि विवाह करवा देना ।

आज से कोई पचास वर्ष पहले लड़कियों के लिए जीवन साथी का चुनाव प्रायः माता–पिता ही करते थे। यहाँ तक कि उनसे इस संबंध में सहमति लेना भी आवश्यक नहीं समझा जाता था। अब स्थिति में कुछ परिवर्तन आ रहा है। माता–पिता इस विषय में उनकी सहमति का ध्यान रखने लगे हैं। कुछ उदाहरण अब ऐसे भी देखने को मिलते हैं जब लड़के–लड़की माता–पिता की इच्छा के विपरीत प्रेम विवाह भी कर लेते हैं। विवाह संबंध कैसे भी बाँधे गए हों उसके पहले लड़के–लड़की के लिए उसके महत्व का ज्ञान, उसकी समग्र जानकारी आवश्यक होती है। उसके अभाव में वैवाहिक जीवन की सफलता बहुत कुछ असंदिग्ध ही रहती हैं।

माता–पिता का अपनी इच्छा को विवाह के संबंध में पुत्र–पुत्रियों पर थोपना उनके साथ एक तरह का अन्याय ही होता है, किन्तु उन्हीं को अपनी अपरिपक्व बुद्धि के सहारे अपना जीवन साथी चुनने की छूट देना भी हितकारी नहीं होता। उनकी राय भी ली जानी चाहिए, किन्तु माता–पिता को उसके साथ–साथ अपने ज्ञान का, अनुभवों का प्रयोग भी करना चाहिए।

विवाह आवश्यक तो है, किन्तु प्रत्येक के लिए अनिवार्य नहीं। साथ ही विवाह की एक आयु, एक स्थिति और सामर्थ्य होती है। उसको ध्यान में नहीं रखते हुए किए गए विवाह संबंध सुख कारक नहीं होते। शारीरिक दृष्टि से रोगी या मानसिक दृष्टि से अविकसित पुत्र का विवाह करके माता–पिता को किसी लड़की के जीवन से खिलवाड़ नहीं करनी चाहिए। विवाह के लिए उस व्यक्ति की सामर्थ्य आँकी जानी चाहिए जिसका विवाह होने को है। माता–पिता को अपने पुत्र के, अपने पाँवों पर खड़े होने पर पत्नी व परिवार का भार उठा लेने की आर्थिक व बौद्धिक सामर्थ्य आ जाने पर ही विवाह की बात सोचनी चाहिए। जो युवक–युवतियाँ माता–पिता की इच्छा के विरुद्ध विवाह करते हैं उन्हें भी यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। जहाँ तक हो सके वहाँ तक माता–पिता की सहमति लेनी ही चाहिए, किन्तु वे किसी झूठी भ्रांत मान्यता के दुराग्रह से बुरी

तरह ग्रस्त हैं और लड़के–लड़की मात्र आकर्षण या सुखद कल्पनाओं से ही प्रेरित हो विवाह नहीं कर रहे हों। उन्हें वैवाहिक जीवन के उतार–चढ़ावों का भी ज्ञान है तो माता–पिता की इच्छाओं को महत्वहीन भी माना जा सकता है।

ग्रामीण व अशिक्षित समाज में माता–पिता लड़के–लड़कियों की आयु, शरीर सामर्थ्य, कमाने की शक्ति, भावी जीवन के संघर्षों व सुखों का ज्ञान आदि का ध्यान रखे बिना ही उन्हें विवाह के जुए में जोत देते हैं, यह बहुत बुरी बात है। यह संतान के साथ बहुत बड़ा अन्याय ही नहीं समाज व राष्ट्र को दिया गया बहुत बड़ा धोखा है। शरीर, मन, बुद्धि से समर्थ होने पर ही बच्चों के विवाह की बात सोचनी चाहिए। बंदर–बंदरी नचाने, गुड्डे–गुड़ियों के ब्याह रचाने की इस अविवेकपूर्ण बाल विवाह प्रथा ने हमारे देश का जो अनिष्ट किया है उसे हम आज तक भोग रहे हैं।

बच्चों को स्वयं स्कूलों में पत्र पत्रिकाओं व तद्विषयक पुस्तकों द्वारा विवाह के पश्चात् उनके सिर पर आने वाली जिम्मेदारी व मिलने वाला सुख, दाम्पत्य व पारिवारिक जीवन की सफलताओं के सूत्र, अनुभव, सावधानियाँ, पारस्परिक समझ, मनमुटाव से बचने के लिए क्या करें आदि जानकारियाँ देनी चाहिए । जिनके अभिभावक नहीं हैं या जो स्वेच्छा से अपना जीवन साथी वरण करना चाहते हैं उन्हें भी पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं, अपने मित्रों के अनुभव या अपने पास पड़ौस में रहने वाले विवाहित दंपत्तियों के जीवन का निरीक्षण और उन पर चिंतन–मनन करके विवाह के पूर्व उसकी मानसिक तैयारी कर लेनी चाहिए।

पारिवारिक सुख पाने के रहस्यों का ज्ञान कराने के नाम पर आज कल जो यौन विषयक पुस्तकें बिकती हैं इनमें सार की कोई बात नहीं रहती, उनमें ले देकर काम–वासना का ही मिर्च–मसाला भरा पड़ा रहता है। वे मार्ग–दर्शन तो कम देती हैं और कुत्साएँ अधिक फैलाती हैं, उत्तेजना भड़काती हैं। इनसे बचा रहना ही

उत्तम है। काम भावना ही दाम्पत्य जीवन का आधार नहीं होती। यह तो उसका एक नगण्य सा अंग मात्र होती है।

युवक–युवतियों के पास चाहे जैसी ही उच्च डिग्रियाँ हों वे जीवन के अनुभव में प्रायः कोरे ही होते हैं, विवाह के पूर्व उनके लिए यह जान लेना बहुत आवश्यक होता है कि उन्हें अपने–अपने सहधर्मी के साथ कैसे निर्वाह करना है। यह देखने में आता है कि माता–पिता के द्वारा निर्धारित किए गए संबंधों को मान करके विवाह कर लेने वाले पति–पत्नी भी अपने दांपत्य जीवन को निभाने में सफल होते हैं और स्वेच्छा से प्रेम विवाह करने वाले दंपत्तियों में भी आगे चलकर खटपट होती है और नौबत तलाक लेने पर पहुँच जाती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि साथी के चुनाव के स्थान पर विवाह और वैवाहिक जीवन के प्रति स्वस्थ व समग्र दृष्टिकोण होना ही सफलता का कारण होता है।

विवाह के सूत्रों में बँधने वालों को यह जान लेना आवश्यक है कि विवाहोपरान्त उन्हें बहुत कुछ देना भी पड़ता है। पत्नी का स्नेह, ममत्व, अनुराग, सेवा, सहयोग, संरक्षण आदि पाने के लिए स्वयं पति को भी उसे विश्वास, संरक्षण, सहयोग, स्नेह, सद्भाव आदि देना पड़ता है। वैवाहिक जीवन वहाँ कटु, शुष्क व नीरस होने लगता है जहाँ साथी से अपेक्षाएँ तो हजार की जाएँऔर अपनी तरफ से देने के लिए कुछ भी तैयार न हो। अपेक्षाएँ करने की अपेक्षा देने की रीति–नीति अपनाई जाए तो अपने आप दांपत्य जीवन में मधुरता का प्रवाह उमड़ने लगता है।

वैवाहिक जीवन मात्र सुख की सेज नहीं वह काँटों का भी पथ है। उसमें सुख–दुःख की धूप–छाँह चलती ही रहती है। ऐसे समय पति, पत्नी के लिए परीक्षा का अवसर होते हैं। उनकी कल्पना विवाह के पहले ही कर लेना और उनसे निपटने की मानसिक तैयारी कर लेना ठीक रहता है। विषम समय में यदि पति–पत्नी एक दूसरे का साथ देते रहेंगे तो उनकी दांपत्य नौका डगमगाने से बच जाएगी और यदि ऐसे समय में वे एक दूसरे को उन

परिस्थितियों के लिए जिम्मेदार ठहराने लगे तो वह डगमगाने लगेगी बहुत संभव है डूब ही जाए।

विवाह के पश्चात् सामान्य रूप से अर्थोपार्जन का दायित्व पति पर आ जाता है और गृह प्रबंध और स्नेह रस–वर्णन का दायित्व पत्नी सम्हालती है। माता–पिता पर आश्रित या अकेले रहने वाले युवक–युवतियों को उस समय उत्पन्न होने वाली समस्याओं का ज्ञान नहीं होता। फिर जब विवाह के पश्चात् वे उनमें उलझते हैं तो उन्हें विवाह जंजाल में फँसने जैसी बात लगने लगती है। क्योंकि वे उसकी मानसिक तैयारी नहीं किये होते हैं।

इन्सान कोई पूर्ण नहीं होता, उसमें कुछ न कुछ दोष, कमियाँ रहती हैं। विवाह के पहले अपने जीवन साथी के बारे में यह आग्रह पालन कि वह ऐसा होगा, ऐसा करेगा, ऐसा बोलेगा, हँसेगा, त्याग करेगा आदि बातें सोचने के साथ ही इसके लिए भी तैयार रहना चाहिए कि यदि उनमें वे सब गुण नहीं हैं जिनकी हमने कल्पनाएँ–अपेक्षाएँ की थीं तो, उन्हें विकसित करने का धैर्य से प्रयास करना चाहिए ।

विवाह के पश्चात् व्यक्ति की संयम, त्याग, बलिदान आदि की भूमिकाएँ आरंभ होती हैं। विवाहोत्तर जीवन में असंयम चाहे शरीर का हो, धन का हो या अन्य कामनाओं का वह दुःखद ही होता है। किन्तु यौवन के रंगीन पंख लग जाने पर इस आयु में व्यक्ति धरती से नहीं आसमान से बात करना चाहता है, जबकि उस रूमानियत का संयमित रूप ही वैवाहिक जीवन में निभ सकता है। अत्यधिक सुंदर पत्नी या सर्वगुण संपन्न पुरुष की कल्पनाएँ कुछ ऐसी ही रूमानियत लिए हुए होती हैं, जबकि दाम्पत्य जीवन का प्रसाद पत्नी का शारीरिक सौन्दर्य नहीं मानसिक, बौद्धिक व आत्मिक सौंदर्य और पति के विवेक, सूझबूझ व धैर्य पर निर्भर करता है। ऐसे दुराग्रह लेकर दाम्पत्य जीवन के मार्ग पर चलने वाले पथिक बीच मार्ग में ही थकित अवसन्न होने लगते हैं। अतः विवाह के पूर्व अभिभावक गुरुजन उन्हें इस संबंध में पूरी जानकारी करा दें।

अकेले रहने वाले युवक युवतियाँ भी इस संबंध में यथार्थ दृष्टि ही लेकर चलें तो वह लाभदायक होगी ।

विवाह के लिए आयु की परिपक्वता ही काफी नहीं रहती । उसके लिए संतुलित दृष्टिकोण का विकसित होना बहुत आवश्यक है। भिन्न–भिन्न गुण, कर्म व स्वभाव के व्यक्ति जीवन भर एक सूत्र में आबद्ध होकर रहते हैं, तो उनमें सुखद प्रसंग भी आते हैं और दुखद प्रसंग भी आते हैं। बुरे दिन भी आते हैं तो अच्छे दिन भी, कष्ट भी आते हैं तो हर्ष के प्रसंग भी। इन सबको धैर्य से स्वीकारते हुए विवाह धर्म का निर्वाह करने की दक्षता तो विवाह के पश्चात् ही प्राप्त होती है, किन्तु उनकी पूर्व जानकारी हो जाना बहुत आवश्यक होता है।

विवाह मात्र कामनाओं की तृप्ति का साधन नहीं यह तो एक धर्म है। इसी कारण पति–पत्नी एक दूसरे के साथ रहकर एक महान दायित्व का पालन करने को प्रवृत्त होते हैं, तो उन्हें एक दूसरे पर अधिकार मिल जाने की बात सोचने की अपेक्षा उसका साहचर्य, सहयोग मिलने की ही भावना रखना हितकर होता है। यह बात नहीं भूल जाना चाहिए कि दोनों एकसूत्र में आबद्ध इसलिए हुए हैं कि अकेला व्यक्ति इस दायित्व को निभा नहीं सकता अतः दो साथी मिलकर निभा रहे हैं, ताकि वह नीरस न हो जाए। उनके सामर्थ्य को देखना उतना ही आवश्यक है जितना विवाह संपन्न कराना।

जब तक मनुष्य अकेला रहता है तब तक वह अपूर्ण रहता है, उसका जीवन स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियों में ही बीतता है । नैतिक जीवन के जो संस्कार मनुष्य में बाल्यावस्था में पड़ते हैं उनका विकास गृहस्थ जीवन में होता है। प्रेम और निष्ठा, तप और त्याग, श्रम और पालन, शील और सहिष्णुता आदि सद्गुणों का उन्नयन पूर्ण रूप से गृहस्थ जीवन में ही होता है। गृहस्थ मनुष्य की सर्वाङ्गपूर्णता का विद्यालय है और विवाह उसका प्रवेश । जिस प्रकार शिक्षा की प्रारंभिक नींव विद्यार्थी के लिए अधिक महत्वपूर्ण होती है उसी

प्रकार गृहस्थ जीवन के सुचारु–संचालन के लिए विवाह की परंपरा भी बड़े महत्व की होती है। इसी उद्देश्य की स्मृति दिलाने के लिए वेद के पाणिगृहीत पुरुष से कहलवाया है–

गृहणामि ते सौभगत्वाय हस्तंमयापत्या जरदष्टिर्यथास।
भगोऽर्य्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याः देवाः ॥

'हे प्रियतमे ! जीवन के पुण्य–पर्व पर मैं देवताओं की सुखद साक्षी में तुम्हारा हाथ अपने हाथ में लेता हूँ। हे सुहागिनि! तुम चिरकाल तक मेरी साथी सौभाग्य शालिनी बनकर रहो। मैं अपनी गृहस्थी का संचालन तुम्हारे हाथ में देता हूँ, सुखपूर्वक इसका निर्वाह करो ।'

वह समय सचमुच कितना सुखद होता है जब मनुष्य देवताओं की साक्षी में उपर्युक्त व्रत धारण करता है। मनुष्य का एकाकीपन, उसकी उदासीनता समाप्त होती है और एक ऐसे जीवन का सूत्रपात होता है जिसमें वह अपने जीवन–ध्येय की प्राप्ति कर लेता है।

उस दिन मनुष्य का क्षेत्र विभाजन होता है। पुरुष आजीविका और उदर–पोषण के सात्विक कर्मों में लगता है और स्त्री गृह कार्य सम्हालती है। इन कार्यों में विवेक, सत्यनिष्ठा और विचार से ही गृहस्थ–जीवन सफल होता है। रस्म के रूप में केवल भाँवरें डालकर अस्त–व्यस्त गृहस्थ–जीवन बिताना भारतीय परंपरा के सर्वथा प्रतिकूल है। हमारे सिद्धांत ऐसे हैं जिनमें विवाह जीवन की अग्नि परीक्षा का प्रारंभ है अतः इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करने से ही गृहस्थ जीवन सार्थक हो सकता है।

त्याग और तपस्या की यह भूमिका भी बड़ी सुखदायी होती है। मनुष्य यदि विवाह काल में किए गए संकल्पों का पालन करता रहे तो सचमुच गृहस्थ में स्वर्गीय सुख का वातावरण उत्पन्न कर सकता है । पत्नी साक्षात् लक्ष्मी स्वरूप होती है। इस धन, इस लक्ष्मी के अभाव में मनुष्य का जीवन नीरस व

निष्प्राण ही बना रहता है। प्रणयी का यह कथन किसी भाँति असत्य नहीं कि–

अमोऽहमस्मि मात्वम् मात्वमस्यमो हम् ।
सामहमस्मि ऋक् त्वं द्यौरहं पृथ्वीत्वम् ॥

'तुम लक्ष्मी हो। मैं तुम्हारे बिना दीन था । सत्य ही तुम्हारे बिना उस जीवन में कुछ भी सुख न था। सौम्ये ! हमारा सम्मिलित साम और उसकी ऋचा, धरती और आकाश के समान है।'

उपर्युक्त शब्दों में स्रष्टा ने विवाह की सबसे महत्वपूर्ण व्याख्या की है। विवाह का प्रश्न किसी व्यक्ति का प्रश्न नहीं वह सम्पूर्ण समाज से संबद्ध है। इसलिए उन विवाहों को, जो व्यक्ति और समाज के हित का विचार करके न किए गए हों, दोषयुक्त ही मानना चाहिए ।

सुख प्राप्ति की आकांक्षा केवल भोग–विलास से पूरी नहीं होती। मनुष्यत्व का विकास भोग से नहीं, संयम से होता है। इसलिए विवाह का हेतु भी भोगेच्छा की पूर्ति नहीं हो सकता । राष्ट्र की संपत्ति, श्रेष्ठ नागरिकों के जन्म देने के लिए नियमित जीवन जीने की जो शर्त लगा दी गई है उससे विवाह का हेतु भोग–विलास कदापि नहीं हो सकता। विवाह एक संकल्प है जो राष्ट्र के भावी बल, सत्ता और सम्मान को जाग्रत रखने के लिए किया जाता है।

शास्त्रकार का कथन है :–

तावेहि विवहाव है सह रेती दधाव है ।
प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून ॥

अर्थात्–''विवाह का उद्देश्य परस्पर प्रीति युक्त रहकर राष्ट्र को सुसंतति देना है।'' ऐसी परम्परा को जीवित रखने के लिए ही 'पाणिग्रहण' को संस्कार का रूप दिया जाता है, किन्तु आज जो पद्धति अपनाई जा रही है उससे बहुधा कोई उद्देश्य पूर्ण नहीं होता। बाल–विवाह की प्रथा से तो और भी अनर्थ होता है। अल्पवय के किशोर बाल जिन्हें यह ज्ञान नहीं होता कि विवाह एक व्रत है, दाम्पत्य जीवन को खिलवाड़ में ही बिताते हैं। फलस्वरूप अनेक

तरह की सामाजिक कुरीतियों, अनर्थ और अनैतिकता का ही प्रसार होता है।

प्रेम–विवाह की आधुनिकतम परंपरा भी सोद्देश्य नहीं, एक आवेश मात्र में जिनके परिणाम कुछ दिनों में बड़े ही भयानक निकलते हैं। असफल ग्रहण और तलाक के अधिकांश मामले प्रेम–विवाह वालों में ही पाए जाते हैं। ऐसे विवाह चंचलता और उच्छृंखलता पर अधिक आधारित होते हैं जो आजीविका या विचार–वैषम्य की गंभीर परिस्थिति आते ही मनुष्य को इस तरह बर्बाद करते हैं कि उनकी तमाम शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं।

ऐसे विवाह केवल आकर्षण से होते हैं । प्रेम को आकर्षण नहीं कह सकते। इस दृष्टि से इन विवाहों को आकर्षण विवाह कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। यह आकर्षण सौन्दर्य या धन के लिए होता है जिसमें स्थिरता नहीं होती, इसलिए इन विवाहों का प्रचलन भी हमारे समाज के अहित का कारण है।

बेमेल, बाल आकर्षण विवाहों की पद्धति भारतीय नहीं है। इन्हें एक सामाजिक अभिशाप ही कहा जा सकता है। इससे विवाह की पवित्रता, विवाह के संकल्प का लक्ष्य पूरा होना तो दूर रहा, अनेक अनर्थ और उपद्रव ही खड़े बने रहते हैं।

यह अनियमितताएँ देशकाल, परिस्थिति और बाह्य संस्कृति के प्रवेश के कारण उत्पन्न हुई हैं इसलिए ये परिवर्तनीय हैं।

यह पद्धति वह है, जिसमें व्यक्ति और समाज के स्वास्थ्य, बल, शारीरिक–बौद्धिक और मानसिक उन्नति, मनुष्य जाति की चिरंतनता, स्फूर्ति, एकता, तेजस्विता, प्रसन्नता और चिरस्थायी सुख का विचार नहीं किया जाता है। विचार हीन पद्धति चाहे वह नई हो या पुरानी उसे प्रमाण मान लेना हमारी सबसे बड़ी भूल है। हमें इन परंपराओं की तुलना में विवेक का आश्रय लेना अधिक प्रतीत होता है।

सफल वैवाहिक परंपरा वह है जिससे इंद्रिय–लालसा और

भोग–भाव मर्यादित रहें, भावों में शुद्धि रहे। संयम और त्याग की ओर मनुष्य की प्रवृत्ति हो। संतानोत्पत्ति से वंश रक्षा, प्रेम की पूर्णता में पारिवारिक सरसता और उल्लास के द्वारा गृहस्थ की पवित्रता ही विवाह का सही दृष्टिकोण होना चाहिए। दूसरों के हित के लिए त्यागमय जीवन का अभ्यास और अंत में जीवन सिद्धि ही विवाह का पवित्र उद्देश्य होना चाहिए।

हिन्दू–विवाहों की आर्ष परंपरा पूर्ण वैज्ञानिक थी, उसमें आज की तरह स्त्री–पुरुष का भेद–भाव नहीं किया जाता था। पुरुष को अधिक श्रेष्ठ और नारी को अपवित्र मानना, कलंकित ठहराना, इस युग का सबसे बड़ा दूषण है। हमारे यहाँ विवाहों में पत्नी का समाद्रत स्थान है। इनमें से एक को प्रमुख और दूसरे को गौण मानने की नीति अज्ञानी लोगों की चलाई हुई है। स्त्री पुरुष का संयोग ही पारिवारिक विकास का मूल है। इस नैसर्गिक प्रवृत्ति की पूर्ति के लिए भेद–भाव की परंपरा असामाजिक है, इसको दूर किया ही जाना चाहिए। मङ्गलमय जीवन का सूत्रधार है–

ते सन्तु जरदृष्टयः सम्प्रियो रोयिष्णू सुमनस्यमानौ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम् शरदः शतम्

"हम सौन्दर्ययुक्त होकर परस्पर प्रीतिपूर्वक जीवनयापन करें। हमारी भावनाएँ मङ्गलमय हों हम सौ वर्ष देखें, सौ वर्ष जियें और सौ वर्ष तक जीवन के वसंत का मधुर राग सुनते रहें।" नीतिकार ने उपर्युक्त वचनों में स्पष्ट कर दिया है कि सुखमय गृहस्थी का आधार स्त्री पुरुषों की एकता, आत्मीयता और प्रेम भावना है। इसके लिए विवाह को कौतुक नहीं एक व्रत मानना है और उसे ज्वलंत संकल्प की भाँति जीवन पर्यन्त धारण किए रहना है।

गृहस्थ जीवन में प्रवेश के पूर्व विवाह के इस महत्व को तथा विवाहोपरांत उपस्थित होने वाली नई–नई जिम्मेदारियों को ठीक से समझना आवश्यक है। इस पूर्व तैयारी के बिना विवाह रचा लेने वालों का सफल दंपत्ति सिद्ध हो पाना कठिन ही होता है। □

दांपत्य जीवन की असफलता के मूल कारण

दांपत्य जीवन के ऊपर पारिवारिक, सामाजिक, व्यक्तिगत सभी तरह की उन्नति, विकास निर्भर करते हैं। पति–पत्नी के सहयोग, एकता, परस्पर आत्मोत्सर्ग, त्याग, सेवा आदि से दांपत्य जीवन की सुखद और स्वर्गीय अनुभूति सहज ही की जा सकती है, इससे मनुष्य के आंतरिक और बाह्य जीवन के विकास में बड़ा योग मिलता है। सभी भाँति स्वस्थ, संतुलित, सुंदर दांपत्य जीवन स्वर्ग की सीढ़ी है और मानव विकास का प्रेरणा–स्रोत है।

जीवन लक्ष्य की लंबी मंजिल को तय करने के लिए पति–पत्नी का अनन्य संयोग यात्रा को सहज और सुगम बना देता है। नारी शक्ति है तो पुरुष पौरुष। बिना पौरुष के शक्ति व्यर्थ ही धरी रह जाती है तो बिना शक्ति के पौरुष भी किसी काम नहीं आता। वह अपंग है। शक्ति और पौरुष का समान प्रवाह, संयोग एकता नव सृजन के लिए, नव–निर्माण के लिए आवश्यक है। इनकी परस्पर असंगति, असमानता ही अवरोध, हानि, अवनति का कारण बन जाती है। पति–पत्नी में यदि परस्पर विग्रह आपा–धापी, स्वार्थपरता, द्वेष, स्वेच्छाचार की आग सुलग जाएगी तो दांपत्य–जीवन का सौंदर्य, विकास, प्रगति, महत्वपूर्ण संभावनाओं का स्वरूप अपने गर्भ में ही नष्ट हो जायगा।

पति पत्नी संसार पथ पर चलने वाले जीवन रथ के दो पहिये हैं जिसमें एक की स्थिति पर दोनों की गति, प्रगति निर्भर करती है। दोनों का चुनाव जितना ठीक होगा दांपत्य जीवन उतना ही सुखद, स्वर्गीय, उन्नत और प्रगतिशील बनेगा। दोनों में से एक भी अयोग्य, कमजोर हो तो दांपत्य जीवन का रथ डगमगाने लगेगा और पता नहीं वह कहीं भी दुर्घटना ग्रस्त होकर नष्ट–भ्रष्ट हो जाए अथवा मार्ग में ही अटक जाए। इससे न केवल पति–पत्नी वरन् परिवार समाज के जीवन में भी गतिरोध पैदा होगा। क्योंकि दांपत्य जीवन

पर ही परिवार का भवन खड़ा होता है और परिवारों से ही समाज बनता है। इस लिए पति–पत्नी का चुनाव एक महत्वपूर्ण पहलू है।

अक्सर देखा जाता है कि लड़के–लड़कियों के संबंध उनके माँ–बाप ही तय करते हैं। वर पक्ष वालों ने गोरी सुंदर लड़की, मालदार घराना देखा लड़की के माँ–बाप ने पढ़ा–लिखा सुंदर लड़का देखा और संबंध तयकर लिया। धूम–धड़ाके के साथ विवाह आयोजन होते हैं। लम्बी–चौड़ी दावतें, खर्च, गाना–बजाना सभी कुछ होता है। किन्तु विवाह हुए कुछ ही दिन समाप्त नहीं होते हैं कि पति–पत्नी में लड़ाई–झगड़े, मन–मुटाव, घृणा–द्वेष के विषाक्त कीटाणु फैल जाते हैं। ये प्रवृत्तियाँ एक ही दिन प्रकट में होने लगती हैं। सारे घर को मालूम होने पर घर वाले बहू को उल्टा–सीधा सुनाते हैं। बात लड़की के माता–पिता तक पहुँचती है तो विचारे सिर पर हाथ धरकर रोते हैं और कहते हैं 'इतना सारा धन पानी की तरह बहाकर भी लड़की को कुँए में फेंक दिया।' पति–पत्नी ही नहीं दोनों परिवार दुःख, क्लेश, चिंता, शोक के अड्डे बन जाते हैं। दंपत्ति मन ही मन अपने दुर्भाग्य पर रोते हैं। परस्पर के क्लेश और लड़ाई–झगड़े में उनके स्वप्नों के महल तहस–नहस हो जाते हैं। कइयों को शारीरिक और मानसिक रोग धर दबाते हैं और वे अल्पकाल में काल कवलित हो जाते हैं। एक छोटी–सी भूल, पति–पत्नी का स्वभाव, गुण, कर्म के आधार पर चुनाव न करना, अनमेल विवाह करना ही इसका मुख्य कारण है। दही और दूध को एक जगह मिलाकर रखने से खराबी पैदा होगी ही। आग और बारूद का अस्तित्व एक जगह कर देना विनाश को निमंत्रण देना है। इसी तरह अनमेल विवाह करना लड़के–लड़कियों के जीवन को बर्बाद करना है।

हमारे एक परिचित युवक अपने माँ–बाप के अकेले पुत्र थे। बचपन से ही उनकी रुचि आध्यात्मिक, धार्मिक थी। अध्ययन के अतिरिक्त अपना समय चिंतन–मनन, साधना आदि में लगाते थे। स्वभाव से बड़े सीधे–सादे संतोषी और उदार थे। उनके वयस्क

होने पर कई लड़की वाले देखने आए। घर वालों ने अच्छा–सा घराना देखकर संबंध तय कर लिया, घर में बहू आई। वह निकली पूरी आधुनिका खाना–पीना, मौज उड़ाना, नित्त नए–नए जेबरों वस्त्रों की माँग करना उसके स्वभाव की विशेषताएँ थीं। पति महोदय साधारण से अध्यापक थे, इस पर भी आध्यात्मिक विचारों के । पत्नी अपनी कामना रुचि इच्छा की पूर्ति न होती देखकर कलह करने लगी। घर भर में विष फैल गया, बहूजी सबसे तकरार करने लगीं। बेचारा युवक इससे चिंतित और परेशान रहने लगा। कुछ ही समय में उनकी स्नायु शक्ति दुर्बल हो गई और वे विक्षिप्त पागल से हो गए। लड़की के माता–पिता भी इस परिस्थिति के कारण चिंता में घुलने लगे। इस तरह दो परिवारों का दुःखद जीवन एक गृहस्थी का उजड़ना, समाज में दूषित प्रभाव पड़ना तथा अन्य बुराइयाँ सब एक ही भूल से पैदा हो गईं, और वह भूल थी अनमेल विवाह की।

पति–पत्नी का चुनाव जहाँ तक हो दोनों की इच्छा, रुचि की अनुकूलता पर होना आवश्यक है। साथ ही इस रुचि का आधार एक दूसरे के गुण, कर्म, स्वभाव, सद्‌भावनाएँ आदि ही होना चाहिए। अन्यथा रूप, यौवन, वासना से प्रेरित निर्णय भी अंततः, दुःख परेशानी परस्पर कलह का कारण बन ही जाता है क्योंकि ये तत्व अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रहते।

कदाचित् पति–पत्नी के स्वभाव आदि में कुछ भिन्नता भी रह सकती है। विभिन्न रुचियों में भी यदि वे परस्पर टकराएं नहीं, एक दूसरे को परेशानी पैदा न करें तो भी दांपत्य जीवन की गाड़ी चलती रह सकती है। निवाहने और समझौता करके चलने की उदारता जिनमें है, वे भिन्न–भिन्न रुचियों के होते हुए भी एक दूसरे को निवाहते हुए चल सकते हैं। वस्तुतः यही मध्यम मार्ग है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी स्वाभाविक विशेषताएँ, भिन्नताएँ कुछ न कुछ अवश्य ही होती हैं। निभाने और समझौता करने चलने के आधार पर ही सम्मिलित कुटुंब प्रणाली भारत में हजारों वर्षों से चली आ रही है। अपनी इच्छा, अपनी कामना और उनकी

पूर्ति को महत्व देकर पति–पत्नी अपने मधुर संबंधों में दरार पैदा कर लेते हैं। स्नेह, प्रेम, आत्मीयता के स्थान पर कटुता के बीज अपने ही हाथों बो लेते हैं, जिसके फलस्वरूप तलाक, हत्या, दुर्व्यवहार, आत्महत्याओं के दुष्परिणाम निकलते हैं।

धनी–निर्धन का प्रश्न भी पति के चुनाव में देखना आवश्यक है। यदि किसी धनवान के यहाँ गरीब लड़की का संबंध हो जाए तो बेचारी को ससुराल में माँ–बाप की गरीबी के ताने सुनने पड़ते हैं, उसकी कोई कदर नहीं की जाती । अपने साथ कोई दहेज न लाने पर उसे जीवन भर कोसा जाता है। कदाचित् पति भी लड़की की उपेक्षा करे तो उसका जीवन भार बन जाएगा और शारीरिक, मानसिक कष्टों से ग्रस्त दुःखी जीवन बिताएगी। कई लोग धन के आकर्षण में अपनी लड़की का विवाह कम या अधिक उम्र के लड़कों से कर देते है। किन्तु दोनों स्थितियों में दांपत्य का दुःखी और असफल होना निश्चित है।

जब धनी घर की लड़की गरीब युवक को ब्याही जाती है तो समस्या और भी पेचीदा हो जाती है ऐसा जब होता है जब लड़की में कोई नुक्स हो अथवा लड़का होनहार योग्य हो। उधर लड़के के माँ–बाप भी खुश होते हैं अमीर और धनी घराने में शादी करके। किन्तु गरीब घर में अमीर की लड़की आने पर बड़ी परेशानी खड़ी हो जाती हैं। जैसा उसे पितृगृह में अभ्यास था उसी के अनुरूप वह सुख–सुविधा, मकान, नौकर, वस्त्र, आभूषण, स्वादिष्ट भोजन, सौंदर्य प्रसाधनों की माँग करने लगती है। बेचारा गरीब पति इन माँगों को पूरा करने में असमर्थ होता है। फलतः असंतुष्ट पत्नी गरीब घर की शांत छाया के लिए चिनगारी बन जाती है।

शिक्षित–अशिक्षित दंपत्ति का जीवन भी क्लेशयुक्त हो जाता है, किसी शिक्षित युवक का विवाह निपट गँवार, निरक्षर लड़की से कर दिया जाए तो दोनों के जीवन की गति में तालमेल नहीं बैठेगा। अशिक्षा के कारण कोई भी पक्ष एक दूसरे की भावना, मानसिक स्थिति को समझ नहीं सकेगा और इसके कारण परस्पर के जीवन

में योगदान नहीं दे सकेगा। ऐसे संबंधों में पति–पत्नी एक दूसरे के सहायक, सहयोगी न रहकर परस्पर भार बन जाते हैं।

कुल मिलाकर दांपत्य जीवन के कलह, विच्छेद, अशांति, विकृतियों का मूल कारण पति–पत्नी का ठीक–ठीक चुनाव न होना ही है और इसके लिए खासकर अभिभावकगण ही जिम्मेदार होते हैं जो अपनी ही रुचि भावना को स्थान देकर वर–कन्या का चुनाव करते हैं। हर हालत में चुनाव करते समय अपनी–अपनी संतान के मत को भी उदारतापूर्वक ध्यान में रखना चाहिए। यह तो आवश्यक है कि संतान यदि कुमार्ग ग्रहण करे तो माता–पिता उन्हें अधिकारपूर्वक रोकें और सही मार्ग दिखाएँ, किन्तु शादी–विवाह जैसे जीवन के महत्वपूर्ण पहलुओं पर संतान की संमति लेना भी आवश्यक है। जो अभिभावक माता–पिता अपने संकुचित और अनुदार दृष्टिकोण अथवा अभिमानवश ऐसा नहीं सोचते, बच्चों की संमति, भावनाओं को उदारता के साथ स्वीकार नहीं करते तो बच्चों का दांपत्य जीवन बरबाद होना, घर उजड़ना स्वाभाविक है। इसका परिणाम उन्हें भी अपने जीवन में भोगना पड़ता है जब संतान द्वारा अपना अपमान होते देखते हैं। घर की कलह, लड़ाई–झगड़े होते देखकर, इज्जत को बिगड़ते देखकर लोगों द्वारा उनका तमाशा देखे जाने पर अनेक अभिभावक नौ–नौ आँसू रोते–कलपते, बिलखते देखे जाते हैं और भी अनेक तरह तड़प–तड़पकर उन नासमझ अभिभावकों को अपनी भूल का पश्चाताप करना पड़ता है।

पिछले दिनों अमेरिका की पत्रिका में एक व्यंग्य प्रकाशित हुआ है कि यहाँ इतने अधिक तलाक लिए जाने लगे, कि शादी के गाउन ऐसे कपड़ों से तैयार किए जाएँ जिन्हे धोकर बिना इस्तरी किए तुरंत ही फिर से पहना जा सके।

अमेरिका में बढ़ती हुई तलाक की संख्या को देखकर यह कहा जाने लगा है कि ''एक स्त्री को पति बदलने में इतना समय नहीं लगता जितना करवट बदलने में लगता है।'' हो सकता है कि इस कथन में अतिशयोक्ति हो पर इतना अवश्य है कि वहाँ नगण्य

सी बातों को लेकर तलाक दे दिया जाता है जिन्हें जानकर हँसी लगती है। पति या पत्नी के मन के विरुद्ध जरा–सी बात हुई कि तलाक का प्रार्थना पत्र न्यायालय में पहुँचा दिया जाता है।

पश्चिमी देशों में तलाक की बढ़ती हुई संख्या ने दांपत्य जीवन में कटुता और अस्थिरता उत्पन्न कर दी है। किसी व्यापारिक संस्थान में काम करने वाली स्त्री शाम को घर लौटेगी या नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता । फिनलैंड के एक वृद्ध दंपत्ति तलाक के प्रकरण को लेकर न्यायालय में पहुँचे। पति की आयु ८७ वर्ष और पत्नी की ८५ वर्ष थी।

न्यायाधीश ने पूछा–"तुम्हारी शादी कब हुई थी?"

'६ दिसम्बर १८७६ को ।'

'तुममें खटपट कब से शुरू हुई?'

'विवाह के ही दिन से ।'

अब न्यायाधीश क्या कहता? तलाक का प्रार्थना पत्र तुरंत स्वीकार कर लिया गया। तलाक के बढ़ते हुए आँकड़ों को देखकर यह स्पष्ट होता है कि महायुद्ध के पश्चात् जिन देशों में तलाक की सुविधा है वहाँ के लोग अपने इस अधिकार का बड़े उत्साहपूर्वक प्रयोग कर रहे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग डेढ़ करोड़ स्त्री–पुरुष तलाक शुदा हैं जिनके चालीस लाख बच्चे अनाथों की तरह जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

रूस में तलाक करना जितना सरल है इतना संसार के अन्य किसी देश में नहीं है। वहाँ यदि पति–पत्नी का जोड़ा परस्पर किसी बात को लेकर असंतुष्ट हो जाता है तो दो–तीन माह का नोटिस देकर तलाक कर सकते हैं। इसके लिए उन्हें न्यायालय में जाने की तभी जरूरत पड़ती है जब बच्चों की देखभाल या संपत्ति के बटवारे को लेकर कोई मतभेद हो। वहाँ एक वर्ष में ७ लाख तलाक हुए। रूस में दंपत्तियों की संख्या लगभग ७ करोड़ है इसका अर्थ यह हुआ कि वहाँ दस प्रतिशत विवाह बंधन टूट जाते हैं। वहाँ कुमारी माताओं को हीन दृष्टि से नहीं देखा जाता। स्त्रियाँ

आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र हैं जिन्होंने औद्योगिक संस्थानों में अपना आधिपत्य जमा रखा है। ब्रिटेन में १९६५ में तलाक के लिए ४३ हजार आवेदन पत्र प्राप्त हुए थे।

पारिवारिक समस्याओं के अमरीकी विशेषज्ञ विलियम गुड ने तलाक समस्या के अध्ययन हेतु जो अंग्रेज देशों के आँकड़े एकत्रित किए हैं उनसे वस्तु स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

प्रति हजार पीछे तलाक–अमेरिका २५९, इंग्लैंड ७०, फ्रांस ३, बेल्जियम ७१, स्वीडन १७५, आस्ट्रेलिया ८९, यूगोस्लाविया १३१ ।

अमेरिका के एक वकील का जो विगत ३५ वर्षों में ३००० से भी अधिक लोगों के तलाक प्रकरणों को निबटा चुके हैं, कहना है– 'मेरे पास तलाक लेने के लिए अधिकतर ऐसे लोग आए जिनकी शादियाँ गलत कारणों से हुई थीं और प्रारंभ से ही जिनके असफल होने की संभावना थी। इनमें अधिक संख्या उन लोगों की थी जिन्होंने बिना सोचे विचारे चटपट विवाह कर लिए।

अमेरिका में पाँच शादियों में एक शांदी ऐसी लड़की की होती है जो विवाह से पूर्व ही गर्भवती हो जाती हैं। जब कोई प्रेमी–प्रेमिका गर्भवती होने के कारण विवाह करने को विवश हो जाते हैं तो उनके सारे रंगीन सपने टूट जाते हैं। वे अब तक जिस रंगीले जीवन का आनंद लेते रहे हैं वह उनसे छिन जाता है। वैवाहिक जीवन में अपने को अच्छी तरह ढाल भी नहीं पाते कि उन पर प्रथम शिशु का उत्तरदायित्व आ जाता है। यदि किसी बच्चे का जन्म न होता तो विवाह के बाद भी पत्नी साल दो साल काम करके परिवार की आर्थिक स्थिति सुधार सकती थी। पर अब आर्थिक तंगी बढ़ती ही चली जाती है।

बहुत–सी शादियाँ शराबखोरी के कारण टूटती हैं। आजकल यह व्यसन औरतों में भी पाया जाता है। वे दिन भर घर में अकेली रहती हैं। समय काटने के लिए थोड़ा–थोड़ा पीना सीख लेती हैं जिससे घरेलू कार्यों की ओर ध्यान नहीं दे पातीं फिर तो उनकी स्थिति इतनी खराब हो जाती है कि कोई भी आदमी उनके साथ रहना नहीं चाहता। निर्धनता, अविश्वास, निर्दयता और रूखापन

जैसे अनेक कारण हैं जो शराबखोरी से संबद्ध हैं ।

कभी–कभी तो शादियाँ शराब के नशे में ही हो जाती हैं। कोई क्लब में किसी लड़की को अपने साथ खाने, नाचने या सिनेमा देखने के लिए ले जाता है और क्षणिक आवेश में शादी शुदा हो जाता है। बाद को तो उसे यह भी याद नहीं रहता कि उसकी शादी क्यों, कहाँ और किन परिस्थितियों में हुई थी। कितनी ही लड़कियाँ ऐसे आदमी से केवल प्रतिशोध की भावना से शादी कर लेती हैं।

कुछ शादियाँ तो केवल पैसे के लिए ही होती हैं। एक लड़की जिसका बचपन गरीबी और अभावग्रस्तता में बीता, ऐसे युवक से शादी कर लेती है जो उसे मौज–शौक की जिंदगी उपलब्ध करा सके, पर कुछ ही दिनों बाद उसे ऐसा लगने लगता है कि वह अपने पति के साथ क्षण भर नहीं रह सकती। कुछ स्त्रियाँ जान–बूझकर ऐसे अधेड़ आदमी को फँसाने का प्रयास करती हैं जिनके पास पैसा अधिक होता है, वे सोचती हैं इसका पैसा अपने हाथ में आ जाएगा। कितने ही पति विवाह के तुरंत पश्चात दिखाने के लिए फर्नीचर, महँगी पोशाकें, कार और मौज–शौक पर इतना अधिक खर्च कर देते हैं कि कर्ज उनके सर पर चढ़ जाता है और उसका ब्याज चुकाते ही उनकी हालत खराब हो जाती है। पत्नी के गर्भवती होते ही खर्च में और वृद्धि होती है जिससे वैवाहिक जीवन में कहा–सुनी हो जाती है।

कितने ही विवाह इसलिए असफल हो जाते हैं कि युवक और युवती का स्वभाव एक दूसरे के योग्य नहीं होता या उसका स्वभाव चिड़चिड़ा अथवा गुस्सैल होता है। कोई स्वार्थी या घमण्डी होता है या ऐसी आदतों का शिकार होता है जिसे दूसरा सहन नहीं करता। कभी–कभी लम्बी अस्वस्थता भी तलाक के द्वार तक पहुँचा देती है।

शारीरिक सौंदर्य को प्रधानता देने वाले दंपत्ति वैवाहिक जीवन के आठ–दस वर्ष व्यतीत हो जाने पर प्रारंभिक आकर्षण में कमी अनुभव करने लगते हैं। पति को लगता है कि पत्नी लापरवाह और भद्दी हो गई है। पत्नी को लगता है कि पति उसकी ओर पूरा–पूरा ध्यान नहीं देता । वह और किसी के चक्कर में रहता है और फिर

उनके लिए तलाक का द्वार खुल जाता है।

जब छोटे–छोटे बच्चे हों उस समय तलाक पति–पत्नी को अभिशाप ही सिद्ध होता है। तलाक के बढ़ते हुए आँकड़े तथाकथित प्रगतिशील देशों के लोगों की अदूरदर्शिता, असहनशीलता और संकुचित दृष्टिकोण की साक्षी देते हैं।

अमेरिका में तलाक लेने के कारण इस प्रकार हैं–

शराबखोरी	३० प्रतिशत
व्यभिचार	२५
उत्तरदायित्व की उपेक्षा	१२
प्रतिकूल स्वभाव	१२
रिश्तेदारों के कारण	७
यौन समस्याएँ	५
मानसिक रोग	३
धार्मिक कारण	३
अन्य कारण	३

तलाक के कुछ भी कारण हों पर उनसे किसी समस्या का समाधान नहीं होता। ऐसे नर–नारी का मानसिक विक्षोभ एवं असंतोष बढ़ते–बढ़ते उन्हें अर्ध विक्षिप्त की स्थिति में पहुँचा देता है। वे अपनी समस्या को हल करने के लिए दूसरा विवाह करते हैं और वे ही समस्याएँ आकर सामने खड़ी हो जाती हैं ।

दांपत्य जीवन के कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को जब तक गंभीरतापूर्वक समझा और निवाहा नहीं जाएगा तब तक मात्र यौनलिप्सा की पूर्ति के लिए किए गए विवाह कभी सफल नहीं होंगे। दो आत्माओं का एक–दूसरे में घुलाने की और एक दूसरे को निवाहने की, एक पक्षीय प्यार देने की भारतीय विवाह परंपरा ही पति–पत्नी को सघन सूत्र में बाँधे रह सकती है, अन्यथा दैनिक जीवन में आते रहने वाले छोटे–छोटे मतभेद ही गृहस्थ जीवन के आनंद को नष्ट कर देंगे। बिना सुदृढ़ आधार पर दांपत्य जीवन की नींव रखे पति–पत्नी के बीच चिरस्थायी सौजन्य पूर्वक निर्वाह नहीं हो सकता।

दांपत्य–जीवन को नारकीय होने से बचाऐं–

दांपत्य जीवन का महत्व मनुष्य की अनेक कोमल एवम् उदारभावनाओं, विचारशीलता तथा सद्वृत्तियों पर खड़ा होता है। स्नेह, आत्मीयता, त्याग, उत्सर्ग, सेवा, उदारता आदि अनेक दैवी गुणों पर दांपत्य–जीवन की नींव रखी जाती है। दांपत्य जीवन यथार्थ की धरती पर कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व का सम्मिलित प्रयास है जिसमें स्त्री–पुरुष का परस्पर स्नेह व आत्मीयता, त्याग, बलिदान, जीवन की कठोरताओं, शुष्क मरुभूमियों को भी सींचकर उसे सरस, सरल और स्वर्गीय बना देता है। अनेक कठिनाइयों में भी इस सम्मिलित प्रयास से पग–पग पर नई आशा, नई उमंग, नई प्रेरणा जगी रहती हैं । पुरुष नारी की सरलता, सहिष्णुता, त्याग सेवा से सशक्त बना रहता है तो नारी पुरुष के स्नेह पूर्ण संरक्षण, आत्मीयता, आदर–सम्मान को पाकर सबला देवी गृहणी के रूप में प्रतिष्ठित होती है।

पति–पत्नी के व्यवहार में सामान्य–सी भूल, असावधानी अथवा अज्ञान, परस्पर के मधुर संबंध, कटुता, द्वेष, प्रतिद्वन्द्विता में बदल जाते हैं। गृहस्थ जीवन में फैले हुए गृह–कलह, असंतोष, संघर्ष, लड़ाई, झगड़े में मनुष्य की उन्नति, विकास, उत्कर्ष सब धरे ही रह जाते हैं। वस्तुतः इनका आधार व्यवहार की सामान्य–सी बातें ही होती हैं, जिनका ध्यान रखा जाए तो दांपत्य–जीवन को नारकीय होने से सहज ही बचाया जा सकता है।

पति–पत्नि की परस्पर आलोचना दांपत्य–जीवन के मधुर संबंधों में खटाई पैदा कर देती है। इससे एक दूसरे की आत्मीयता, प्रेम, स्नेहमय आकर्षण समाप्त हो जाता है। कई व्यक्ति अपनी स्त्री की बात–बात पर आलोचना करते हैं। उनके भोजन बनाने, रहन–सहन, वस्त्र ओढ़ने–पहनने, बोलचाल आदि तक में नुक्ताचीनी करते हैं। इससे स्त्रियों पर दूषित प्रभाव पड़ता है। पति की

उपस्थिति उन्हें बोझ सी लगती है, वे उनकी उपेक्षा तक करने लग जाती हैं ।

स्त्रियाँ सदैव यह चाहती है कि पति उनके काम, रहन–सहन आदि की प्रशंसा करें। वस्तुतः पति के मुँह से निकला हुआ प्रशंसा का एक शब्द पत्नी को वह प्रसन्नता प्रदान करता है जो किसी बाह्य साधन, वस्तु से उपलब्ध नहीं हो सकती। पति की प्रशंसा पाकर स्त्री अपनत्व तक को भूल जाती है। दांपत्य–जीवन में जो परस्पर प्रशंसा करते नहीं अघाते वे संतुष्ट और प्रसन्न रहते हैं।

जिन स्त्रियों को पतियों की कटु आलोचना सुननी पड़ती है वे सदैव यह चाहती हैं कि कब ये यहाँ से हटें और पति की अनुपस्थिति में वे अन्य माध्यमों से अपने दबे हुए भावों की तृप्ति करती है। सखियों के साथ गपशप लड़ाती हैं। तरह–तरह के बनाव शृंगार करके बाजारों में निकलती हैं, यहाँ तक कि कई तो पर पुरुषों की प्रशंसा पात्र बनकर अपने भावों को तृप्त करने का भी प्रयत्न करती हैं। जो प्रेम और प्रशंसा उन्हें पति से मिलनी चाहिए थी उन्हें अन्यत्र ढूँढ़ने का प्रयत्न करती हैं। कई स्त्रियाँ अन्य मानसिक रोगों से ग्रस्त हो जाती हैं। उन्माद, भूतव्याधा, हिस्टीरिया, स्नायु रोगों से पीड़ित हो जाती हैं अथवा क्रोधी, चिड़चिड़े स्वभाव की झगड़ालू बन जाती हैं। घर उन्हें सूना–सूना और उजड़ा हुआ–सा लगता है। जहाँ स्त्री को पति की प्रेम युक्त प्रशंसा के स्थान पर कटु आलोचनाऐं सुननी पड़ती हैं, वहाँ सहज प्रेम तो समाप्त हो ही जाता है। पति गृह नारी के लिए जिस आकर्षण, प्रसन्नता और उल्लास का वातावरण होना चाहिए, वह निराशा, खिन्नता, रुखाई और श्मशानवत् नीरवता में बदल जाता है। वहाँ सद्भावना, प्रेम, आत्मीयता से रहित पति–पत्नी के जड़ शरीर ही हिलते–डुलते नजर आते हैं।

इसी तरह स्त्रियों द्वारा पति की उपेक्षा, आलोचना करना भी इतना ही विषैला है। पुरुषों को अपने काम से थककर आने पर घर में प्रेम एवम् उल्लास का उमड़ता हुआ समुद्र लहराता मिलना

चाहिए जिसमें उनकी दिनभर की थकान, क्लान्ति, परेशानी घुल जाती है। इसके स्थान पर यदि पत्नी की कटु आलोचना, व्यंग्यबाण, बच्चों की धरपटक, हाय हल्ले का सामना करना पड़े तो उस व्यक्ति की क्या दशा होगी, भुक्तभोगी इसका सहज ही अनुमान लगा सकते हैं।

अच्छे–अच्छों का धैर्य उस समय डिग जाता है जब पत्नी के कटु–क्लेश व्यवहार का सामना पुरुष को लगातार करना पड़ता है। फ्रांस का सम्राट नेपोलियन तृतीय अपनी पत्नी की आलोचना और रुखाई से तंग आकर वेश्याओं के यहाँ जाने लगा था। उसने एक अन्य स्त्री से भी अपना संबंध बना लिया था। लिङ्कन जैसा महापुरुष अपने अच्छे स्वभाव और सद्‌गुण के बल पर दांपत्य–जीवन को काफी समय तक निवाहता रहा, किन्तु अंत में उससे अलग होना पड़ा। महान विचारक टाल्सटाय अपनी स्त्री के कर्कश स्वभाव को सहते रहे, किन्तु अंत में बयासी वर्ष की आयु में परेशान होकर, घर छोड़कर चले गए और रास्ते में ही निमोनियाँ के प्रभाव से उनकी मृत्यु हो गई।

इस तरह के अनेक उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। पत्नी की कर्कशता से तंग आकर व्यक्ति यदि आदर्शवादी होता है तो वह दार्शनिक विचार तथा क्रियाओं की ओर मुड़ जाता है। जैसे सुकरात, भतृहरि आदि। इसके विपरीत साधारण मानसिक शक्ति और सामान्य बुद्धि वाला हुआ तो वह वेश्यागामी, शराबी, व्यसनी बन जाता है। जिन लोगों को घर में स्त्रियों का प्रेम, सद्‌भाव नहीं मिलता वे अन्यत्र उस प्रेम की पूर्ति करना चाहते हैं। अथवा नशेबाजी आदि व्यसनों में अपनी परेशानी भुलाना चाहते हैं। घर के कटुतापूर्ण, आलोचना प्रधान वातावरण के कारण कितने ही लोगों का जीवन अपराधी बन जाता है।

पति–पत्नी की एक दूसरे के प्रति कट्टरता और अविश्वास की भावना भी गृहस्थी को नष्ट कर देती है। जब पति–पत्नी एक दूसरे के चरित्र, व्यवहार, रहन–सहन पर संदेह करने लगते हैं तो

पारस्परिक मधुर संबंधों के बीच गहरी खाई पैदा हो जाती है और वह धीरे-धीरे बढ़ती ही जाती है। इससे दांपत्य जीवन की सुख-शाँति तो नष्ट होती है कालांतर में आत्म-हत्या, हत्या, धोखेबाजी के रूप में कई भयंकर परिणाम भी मिलते हैं। अखबारों में आए दिन इस तरह के समाचार पढ़े जा सकते हैं। वस्तुतः परस्पर सचाई, नम्रता, सहिष्णुता और उदारता, क्षमा से ही दांपत्य-जीवन निभता है। इससे बुरे पक्ष का भी गुजारा हो जाता है।

कुछ समय पूर्व अनेक सदस्यों का मिला-जुला सम्मिलित परिवार सुख शांति पूर्वक अपने दिन गुजारता था। सबका निर्वाह भली प्रकार होता था, अनेकता में एकता की साध भी पूरी होती थी । किन्तु अब तो बड़े सम्मिलित परिवारों की बात तो दूर परस्पर पति-पत्नी में ही एकता, समता, सामंजस्य नहीं है। इसका कारण है परस्पर अधिकार की भावना, आपाधापी और व्यक्तिगत स्वार्थ का दृष्टिकोण एवं सामंजस्य की भावना का अभाव।

वस्तुतः एक से दो अथवा अधिक का निर्वाह तभी हो सकता है जब उनमें परस्पर आपाधापी की भावना न हो। अपना स्वार्थ, अपना सुख, अपना लाभ, अपनी इच्छाओं की पूर्ति के संकीर्ण दृष्टिकोण को छोड़ने में ही पति-पत्नी या परिवार के जीवन की गति संभव है। घर में तनातनी या लड़ाई-झगड़ा होने पर बाजार में जाकर मिठाई खाने वाले, पत्नी को दुःखी, असंतुष्ट, परेशान छोड़कर मौज-मजा करने वाले, मित्रों में जाकर हँसी-खुशी मनाने वाले पति कभी भी अपनी पत्नी की सद्भावना और आत्मीयता प्राप्त नहीं कर सकते। इसी तरह दिन भर काम से थके हुए पुरुष को समय पर आवश्यक सेवा, सहायता, सहानुभूति न देकर सखियों में गपशप लड़ाने वाली, पड़ौसिन के यहाँ जाकर बातें बनाने वाली या घर में कुहराम मचा देने वाली स्त्री दांपत्य जीवन के नीड़ में ही आग लगा देती है। इसकी ज्वालाओं से दग्ध पुरुष की निराशा, कुण्ठा, अवसाद और फिर विरक्ति

के उच्छवासों में दांपत्य जीवन की सभी स्वर्गीय संभावनायें नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं।

पति-पत्नी का एक समान संबंध है, जिनमें न कोई छोटा है, न कोई बड़ा। जीवन यात्रा के पथ पर पति-पत्नी परस्पर अभिन्न हृदय साथियों की तरह ही होते हैं। दोनों का अपने-अपने स्थान पर समान महत्व है। पुरुष जीवन क्षेत्र में पुरुषार्थ और श्रम के सहारे प्रगति का हल चलाता है तो नारी उसमें नव-जीवन, नव-चेतना, नव-सृजन के बीज वपन करती है। पुरुष जीवन रथ का सारथी है तो नारी रथ की धुरी। पुरुष जीवन-रथ में जूझता है तो नारी उसकी रसद, व्यवस्था और साधन-सुविधाओं की सुरक्षा रखती है। किन्तु अज्ञान और अभिमान पुरुष नारी के इस सम्मान का पालन नहीं करता। दांपत्य जीवन में विषवृद्धि का एक कारण परस्पर असम्मान और आदर भावनाओं का अभाव भी है।

दांपत्य जीवन में गतिरोध पैदा होने का एक कारण विवाह और संबंध तय होने की गलत परंपराऐं भी हैं। अक्सर माता-पिता द्वारा केवल जातीय नियम या ऊपरी बातें देखकर ही विवाह संबंध तय हो जाते हैं, किन्तु इससे विवाह का मूल उद्देश्य पूरा नहीं होता, इसी तरह नई सभ्यता के भावुकता और अंधे प्रेम पर आधारित अनुभव विवाह संबंधों के दुष्परिणाम और विफलता कुछ कम हानिकारक नहीं होते।

उक्त दोनों ही आधार गलत हैं। एक अनमेल विवाह में दंपत्ति के विचार, भाव, मानसिक स्तर में भिन्नता रहना स्वाभाविक है। दूसरे में, विवाह एक बच्चों जैसा खेल बनकर रह जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि विवाह संबंध में गुण, कर्म, स्वभाव का समुचित मेल मिलाया जाए। गुण, कर्म और स्वभाव की प्रेरणा से होने वाले संबंध चिरस्थायी, मधुर और सत्परिणाम देने वाले होते हैं। सावित्री ने गुणों से प्रभावित होकर सत्यवान को अल्पायु होने पर भी अपना पति चुना था। गुण और कर्तव्य पर आधारित दंपत्ति के जीवन की अनेक समस्याएँ सहज ही सुलझ जाती है।

दांपत्य जीवन सफल कैसे बने ?

मनुष्य को जब एक प्रगाढ़ आत्मीय और आजीवन सहचरत्व निभाने की आवश्यकता अनुभव होती है, तब विवाह होता है। विवाह एक ऐसी मैत्री का पुण्य आरंभ है जो समस्त कमियों, त्रुटियों के बाबजूद भी जीवन भर अक्षय बनी रहती है। अन्य मित्रताएँ बनती और टूटती रहती हैं। मनुष्य अपने सामाजिक जीवन में कई मित्र बनाता है और उन्हें भूलता रहता है, उन मित्रताओं के मूल में कोई न कोई स्वार्थ अवश्य रहता है। इसीलिए वे बनती हैं और टूटती भी हैं। जीवन साथी को अङ्गीकार करने का धर्मानुष्ठान विवाह ही एकमात्र ऐसी मित्रता है जो निस्वार्थ भाव से आरंभ होता है, आत्म त्याग से पोषित, प्रेम से सिंचित, पल्लवित और पुष्पित होता है। ये भाव आजीवन बने रहें तो दांपत्य जीवन में सुख–शांति और आनंद के मधुर फल लगते हैं।

कई लोग समझते हैं कि दांपत्य जीवन के लिए प्रचुर मात्रा में धन आवश्यक है। पर्याप्त मात्रा में सुख–सुविधाओं के साधन पास में हों तो व्यक्ति चिरंतन उनका लाभ उठाता रह सकता है। यह मान्यता अब तक के हजारों, लाखों और करोड़ों द्वारा कही जाने पर भी दंपतियों के अनुभव में गलत ही सिद्ध हुई है। सच तो यह है कि किसी भी दंपति ने आज तक यह अनुभव नहीं किया कि धन–संपदा के कारण वे दुखी और क्लान्त विवाहित जीवन जी रहे हैं। धन के अभाव से उत्पन्न होने वाली पारिवारिक विवशताऐं अवश्य कष्ट पहुँचाती हैं, पर ये कष्ट भी मधुर दांपत्य संबंधों के कारण कम पीड़ा पहुँचाते हैं। पति–पत्नी का प्रेम उन कष्टों के घाव पर मरहम का काम करता है।

अक्सर देखा गया है कि धनवान् व्यक्तियों का दांपत्य जीवन निरानंद और नीरस हो जाता है। पति धन कमाने में इतना व्यस्त रहता है कि पत्नी से दो प्रेम भरे बोल भी नहीं बोल सकता। इसके अभाव में पत्नी धन और ऐश्वर्य में उस सुख की तलाश करती है, परंतु वहाँ निराश होना पड़ता है फलतः सारा आक्रोश पति या परिवार के अन्य सदस्यों पर उतरता है तो दांपत्य संबंध कटुता पूर्ण तथा मनमुटाव से भर जाता है।

कुछ लोगों की यह भी मान्यता है कि सुखी दांपत्य जीवन के लिए पति–पत्नी का शिक्षित होना अनिवार्य है। शिक्षित पति–पत्नी अपने दांपत्य संबंधों को अधिक सुलझा और निखरा तो बना सकते हैं। पर दांपत्य जीवन के लिए जो दूसरे तत्व अनिवार्य हैं, वे न हों तो शिक्षा उल्टे दांपत्य संबंध में विकार उत्पन्न कर देती है। शिक्षा दांपत्य जीवन को सरस भी बना सकती है और नीरस भी। एक बारगी शिक्षा न भी हो और दांपत्य संबंध उन सब अपेक्षाओं को पूरा करते हुए चल रहे हों जो कि उसके लिए आवश्यक हों तो पति–पत्नी अशिक्षित रहते हुए भी सुखी और प्रेमपूर्ण रह सकते हैं। करोड़ों लोग अशिक्षित रहते हुए भी दांपत्य जीवन को सफलता पूर्वक जी रहे हैं। जबकि लाखों शिक्षित व्यक्ति उन गुणों के अभाव में तनावपूर्ण जीवन जी रहे हैं।

दांपत्य जीवन को सुखी बनाने के लिए धन भी आवश्यक है और शिक्षा भी, पर मूल आवश्यकता कुछ और ही है। धन और शिक्षा वही काम करते हैं जो सोने के आभूषण बनाने के लिए आँच और हथौड़ी हो तो सोने का आभूषण बन जाता है पर सोना ही नहीं हो तो आभूषण किस धातु का बनेगा। धन और शिक्षा से दांपत्य जीवन को सुविधा संपन्न बनाया जा सकता है पर आनंदमय नहीं। आनंदमय दांपत्य जीवन के लिए उन गुणों की आवश्यकता है जो पति–पत्नी के दो शरीरों में बसने वाली दो आत्माओं को एक सूत्र में आबद्ध कर दें। वे गुण प्रेम, आत्मीयता, स्नेह त्याग और परिमार्जित भावनाएँ तथा परिमार्जित दृष्टिकोण हैं।

प्रेम ही वह सूत्र है जो पति–पत्नी को बाँधता है। न केवल बाँधता है वरन् आत्मोत्सर्ग, त्याग और निस्वार्थ भावना को भी जन्म देता है। इसका आधार न तो सौंदर्य है और न कामुकता। इस दिव्य अमृत की वर्षा एक दूसरे के दृष्टिकोण को सामने और एक दूसरे की सुख–सुविधाओं के लिए अपनी आवश्यकताओं की उपेक्षा करने पर होती है। स्त्री–पुरुषों के स्वभाव मिलते हों और दोनों एक दूसरे के लिए आत्मदान की भावना रखते हों, तो दीन–हीन स्थिति में कम साधन और कम शिक्षा में भी हँसी–खुशी का मधुर जीवन जिया जा सकता है।

अशिक्षित और गरीब दंपतियों में जो प्रेम, जो आनंद और जो संगीत होता है उसका कारण यही दिव्य प्रेम है। सौभाग्य से भारतीय परिवार आधुनिकता से कोसों दूर हैं। लड़कियों को ये भावनाएें विरासत के रूप में मिलती हैं और वे इन्हीं भावनाओं के बल पर पति की सर्वस्व स्वामिनी बन जाती हैं, उन्हें अपनी इच्छानुसार मोड़ सकती हैं। आधुनिक परिवारों में दांपत्य जीवन का आनंद स्रोत सूख जाने का कारण यह नहीं है कि उनमें एक दूसरे के प्रति कोई भावना नहीं होती। भावनाएें होती तो हैं, पर उन भावनाओं से भी अधिक महत्व अपने स्वार्थ को दिया जाता है। आधुनिक शिक्षित परिवारों में तनावपूर्ण दांपत्य संबंधों का कारण यह है कि वहाँ पति–पत्नी एक दूसरे की सुविधाओं से अधिक अपने स्वार्थ को महत्व देते हैं। कहना नहीं होगा कि ऐसा दांपत्य जीवन आत्मिक कम व्यावसायिक संबंधों जैसा अधिक होता है, जो अपनी स्वार्थपूर्ति में तनिक–सी भी कमी आ जाने पर चटखने लगता है।

असुंदर और कुरूप जोड़ियाँ भी प्रेम का अमृत लेकर हँसी–खुशी तथा मौज–मस्ती की जिन्दगी जीती देखी जा सकती हैं। जबकि रूपवान् और सुंदर दंपति भी प्रेम के अभाव में क्लेशपूर्ण जीवन जीने के लिए विवश देखे जाते हैं। प्रायः तो सुंदर दंपति जो शारीरिक आकर्षण से आकृष्ट होकर विवाह बंधन में बँधते हैं असफल जीवन जीने लगते हैं। क्योंकि शरीर की सुंदरता कुछ ही समय तक रहती है और वे प्रेम भावनाएें बढ़ाने की अपेक्षा अपना सौंदर्य सुरक्षित करने की ओर ही अधिक प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसे दंपतियों के जीवन में दो–चार बच्चे होने पर नरक का–सा वातावरण बन जाता है। क्योंकि तब तक सौंदर्य चुक गया होता है और प्रेम भावना का विकास न होने के कारण दोनों एक दूसरे से जल्दी ऊब जाते हैं। कहने का अर्थ यह नहीं कि सभी सुंदर जोड़ियाँ असफल दांपत्य जीवन जीती हैं। यदि वे भी प्रेम भावना के विकास की ओर ध्यान दें तो सुंदरता के ढल जाने

पर भी हँसी खुशी का जीवन बना रह सकता है। क्योंकि बच्चे हो जाने पर तो दांपत्य जीवन में और भी परिपक्वता तथा निखार आता है।

आत्मदान प्रगाढ़ प्रेम की आत्मा है। उसमें एक दूसरे की आवश्यकताओं का इतना ध्यान रहने लगता है, कि अपनी आवश्यकताएँ एकदम उपेक्षणीय लगने लगती हैं । साथी की सुविधा का ध्यान रखना ही अपना धर्म बन जाता है और उसमें साथ–साथ मरने की दृढ़ भावना बन जाती है। सन् १९५२ में एक ऐसा ही दृश्य टाईटेनिक नामकअंग्रेजी जहाज पर देखने में आया था। समुद्री तूफान के कारण यह जहाज डूबने लगा। उसके कर्मचारी लाइफ बोटों द्वारा यात्रियों तथा आवश्यक सामान को बचाने लगे। उसी जहाज पर स्टाल नामक दंपति भी यात्रा कर रहे थे। जहाज में इतना पानी भर गया कि दोनों में से एक को ही बचाया जा सकता था। स्टाल ने अपनी पत्नी इसाडोरा को बचाने की सोची और इसाडोरा स्टाल को लाइफबोट पर जाने के लिए जिद करती रही। अंत में स्टाल ने अपनी पत्नी को उठाकर लाइफबोट में बैठा दिया। जहाज डूबने को ही था इसाडोरा लाइफबोट से कूदकर अपने पति के पास आ गई। और बोली– ''मैं अकेली जीकर ही क्या करूँगी। क्यों न हम दोनों साथ–साथ ही मृत्यु का वरण करें।'' दोनों ने एक साथ जल समाधि ली और मौत को अपने गले लगाया। इसाडोरा द्वारा कहे गए इन शब्दों में कितनी आत्मीयता, कितना प्रेम और कितनी गूढ़ भावना थी।

विश्वास दांपत्य प्रेम का प्राण है। पति–पत्नी को एक दूसरे पर इतना प्रगाढ़ विश्वास होना चाहिए कि उसमें दुराव–छिपाव का कहीं कोई नाम भी न रहे। नव–दंपतियों में, विशेषतः युवकों में अपनी पत्नी के प्रति संदेह की भावना रहती है। पत्नी भी पति का यकायक विश्वास नहीं कर पाती। इसका कारण अपरिचय ही है। जैसे–जैसे पति–पत्नी एक दूसरे के घनिष्ठ संपर्क में आते जाएं

वैसे–वैसे संदेह की संभावना को निर्मूल करते जाना चाहिए, उसे जड़ से ही उखाड़ फेंकना चाहिए। दुराव–छिपाव, दिखावटी और बनावटी व्यवहार की नीति जितनी जल्दी बदली जा सके उतनी जल्दी बदल डाली जाए और परस्पर विश्वास उत्पन्न किया जाए।

उदारता विश्वास का पोषक तत्व है। दांपत्य–जीवन में कई ऐसे अवसर भी आते हैं जब मन में कोई संदेह पलता है और पति या पत्नी किसी अनजाने संकोच के कारण एक दूसरे से कह या पूछ नहीं पाते। दांपत्य जीवन को सफल बनाने में यह स्थिति बाधक है। संदेह का अँकुर जब बढ़ने से रोका नहीं जाता तो वह घृणा और अविश्वास के वृक्ष रूप में बदलने लगता है और जरा–जरा सी बातों पर एक दूसरे पर आक्षेप तथा छींटाकशी की प्रवृत्ति बल पकड़ती है। यह घृणा अविश्वासी को इतना अधिक बढ़ा देती है कि विग्रह की स्थिति तक बन जाती है।

उचित तो यह है कि संदेह का वातावरण ही न बनने दिया जाए। पति या पत्नी से कोई बात छुपाने पर किसी पक्ष को यदि संदेह हो भी जाए तो सम्मानपूर्वक उसे एक दूसरे से पूछकर दूर कर लेना चाहिए। ये बातें परस्पर से ही संबंधित हैं। इनमें न तो किसी मध्यस्थ की आवश्यकता रहती है और न किसी माध्यम की। वरन् ये तत्व और भी गड़बड़ी पैदा करते हैं। सद्भावनापूर्वक एक दूसरे से पूछ लेना ही अपने संदेह को दूर करने का एकमेव मार्ग है।

दुराव–छिपाव के अतिरिक्त उपेक्षापूर्ण व्यवहार भी संदेह का वातावरण बना देते हैं। पति, पत्नी के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और पत्नी, पति के लिए। सैद्धांतिक रूप से तो इस तथ्य को हर कोई स्वीकार करता है, परंतु व्यवहार में यदा–कदा यह तथ्य भुलाया भी जाने लगता है। कंई बार ऐसी स्थितियाँ भी बनती हैं जो उपेक्षा मन मुटाव भी पैदा कर देती है जैसे स्त्री बीमार है और पुरुष अपने काम–काज में इतना व्यस्त है कि उसे पत्नी के स्वास्थ्य की परवाह करने की फुरसत ही नहीं मिलती। फुरसत

निकाली तो जा सकती है पर पति यदि स्त्री के स्वास्थ्य को हल्के रूप में लेता है तो वह स्थिति दांपत्य जीवन को विषाक्त बना देती है। स्मरण रखा जाना चाहिए कि पति–पत्नी एक दूसरे के अभावों की पूर्ति और परेशानियों में सहायक की भूमिका लेकर जीवन संग्राम में उतरते हैं। फिर एक दूसरे की उपेक्षा हो तो संदेह का जन्म अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

दांपत्य जीवन को सर्वोत्तम बनाने में भावनात्मक रूप महत्वपूर्ण होता है। भावनात्मक परिष्कार का अर्थ है पति–पत्नी एक दूसरे के प्रति कर्तव्यनिष्ठ और सद्‌भाव संपन्न हों । पुरुष में पुरुषत्व के गुण हों और स्त्री में नारीत्व के, तो कोई कारण नहीं कि दांपत्य जीवन में आनंद की धारा न बहे। दांपत्य जीवन के सभी क्रिया–कलाप, कार्यक्रम और योजनाएँ इन्हीं गुणों के आधार पर बनती व चलती हैं। पुरुषत्व का अर्थ है–शक्ति, साहस, सक्रियता और नियमितता तथा नारीत्व में कोमलता, मृदुलता, स्नेह सौम्यता और सहानुभूति के गुण पूर्ण रूप से विद्यमान होना चाहिए।

पति–पत्नी के अनेक गुणों का पहला स्थान हो तो प्रेम, विश्वास, आत्मीयता आदि का परिमार्जन और परिवर्धन अपने आप होता रहता है तथा जीवन में घनिष्ठता भी आप ही आप बढ़ती रहती है तथा उनके जीवन में आनंद की कोई कमी नहीं रहती। एक बात का स्मरण और रखना चाहिए कि गल्तियाँ सभी से होती हैं । उनके कारण छोटी–छोटी बातों के लिए एक दूसरे को झिड़कना, डांटना, अपशब्द कहना या कोसना मूर्खता का चिह्न है। इन बातों से दांपत्य जीवन की जड़ें धीरे–धीरे कुरैदी जाती हैं।

सफल दंपति ही सुयोग्य संतानें उत्पन्न कर सकते हैं, सद्‌गुणी नागरिकों का जन्म सुयोग्य संतानों के रूप में ही होता है। अतः दांपत्य जीवन की सफलता या असफलता पूरे समाज को प्रभावित करती है। इसलिए न केवल व्यक्तिगत या पारिवारिक दृष्टि से वरन् सामाजिक दृष्टि से भी गृहस्थ योग की साधना अनिवार्य है।

बहुत–सी पत्नियाँ समझने लगती हैं कि विवाह का अर्थ–

श्रृंङ्गार, विलास और आलस्य है। हमारी फरमाइश हर तरह पूरी ही होनी चाहिए, मुझे मनाने–रिझाने आदि में पति को अधिक से अधिक शक्ति और समय लगाना ही चाहिए। इस तरह जो लोग बहुत अधिक आशा करते हैं, वे बहुत कुछ पाकर भी दुखी हो जाते हैं, इसलिए कम से कम आशा करो और उससे जो अधिक मिल जाए, उसे सौभाग्य समझो।

यह ठीक है कि दांपत्य–जीवन इतने में ही सार्थक नहीं हो जाता, विशेष सेवा, विनोद, आकर्षण, हर काम में सहयोग आदि बहुत–सी बातें दांपत्य की सार्थकता के लिए जरूरी हैं, सो उनके लिए यथाशक्य प्रयत्न करना चाहिए, बिना प्रयत्न के ही मिल जाएँ तो सौभाग्य, पर उपर्युक्त पाँच बातों के मिल जाने पर असंतुष्ट न होना चाहिए और असंतोष प्रकट करना तो और भी ठीक नहीं। रूप, विद्या, कला, स्वास्थ्य, धन बल आदि की कमी का विचार विवाह के पहले कर लिया जाए, पीछे इस विषय में असंतोष व्यक्त करने की जरूरत नहीं है, पीछे तो इन त्रुटियों के रहते हुए भी संतोष के साथ जीवन बिताना चाहिए।

साथी का स्वभाव और रुचि समझें और उनके अनुसार व्यवहार करें।

किसी का स्वभाव एकांत प्रिय होता है, किसी के स्वभाव में गप्पें मारने की आदत होती है, कोई संघर्षशील होते हैं। कोई बड़े तुनक मिजाज, किसी को गाने–बजाने में मजा आता है, कोई इससे चिढ़ते हैं और नीरवता पसंद करते हैं, किसी की आदत क्रीड़ा–विनोद में लगे रहने की होती है, कोई किसी न किसी काम से लगे रहना पसंद करते हैं, किसी को भाँति–भाँति के भोजन बनाने खाने में मजा आता है, कोई इस तरफ से लापरवाह होते हैं, कोई श्रृंङ्गार या सजावट को अधिक पसंद करते हैं, कोई इसमें समय, शक्ति, साधन लगाना व्यर्थ समझते हैं। इस प्रकार अनेक लोगों की अनेक रुचियाँ होती हैं। इस प्रकार का रुचि स्वभाव भेद पति–पत्नी में भी हो सकता है ऐसी बातों को लेकर संघर्ष नहीं होना चाहिए। इस

संघर्ष को टालने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि घर की आर्थिक स्थिति का ख्याल रखते हुए और अपने–अपने कर्तव्य का भार संभालते हुए यथाशक्ति दोनों को स्वतंत्रता दी जाए, अपनी आदत ऐसी बनाई जाए कि दूसरे की स्वतंत्रता में बाधा न पड़े। अपना कर्तव्य पूरा करने के बाद अगर किसी को गाने–बजाने में अच्छा मालूम होता है तो उसको उसकी स्वतंत्रता हो, शर्त यह है कि इतना शोर न मचाया जाए कि दूसरे को अपना काम करना या चैन से बैठना मुश्किल हो जाए।

यद्यपि दांपत्य में नियमों की पाबंदी से ही काम नहीं चल सकता, नियमों के उद्देश्य पर ध्यान देना पड़ता है और एक–दूसरे की सुविधा और स्वतंत्रता का ख्याल रखना पड़ता है, फिर भी इस काम के लिए साथी के स्वभाव और रुचि को समझना जरूरी है। स्वभाव की परख हो जाने पर संघर्ष को बचाने की सुविधा हो जाती है।

एक–दूसरे की सेवा या मनोरंजन खुशी से किया जाए तभी उससे वास्तविक संतोष होता है और करने वाले को भी वह बोझ मालूम नहीं होता। घर के बाहर भी इस नियम की जरूरत है, पर दांपत्य में तो यह आवश्यक है।

जबरदस्ती तीन साधनों की अपेक्षा तीन तरह की होती है– तन से, वचन से, अर्थ से। वचन से जबरदस्ती का अर्थ है–गाली देना, कठोर वचन बोलना या कठोर स्वर में बोलना आदि। तन से जबरदस्ती का अर्थ है– मारना–पीटना आदि। अर्थ से जबरदस्ती का अर्थ है– योग्य साधनों का उपयोग न होने देना आदि।

दांपत्य को सुख–शांतिमय बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें न तो जबरदस्ती से काम लिया जाए और न यथाशक्य जबरदस्ती को मौका दिया जाए। इशारे में या थोड़े में ही एक दूसरे के मनोभावों को समझा जाए और नैतिक–मर्यादा का पालन करते हुए एक–दूसरे के अनुकूल बना जाए। पति–पत्नी में थोड़े–बहुत झगड़े होते ही हैं और शांत भी हो जाते हैं, पर अगर उनका

उल्लेख बाहर कर दिया जाता है, तो घर में झगड़ा शांत हो जाने पर बाहर निंदा होती ही रहती है और घर की इज्जत को धक्का लगता है, बाहरी लोगों की दृष्टि में दोनों हीन या दयनीय हो जाते हैं। इस प्रकार दोनों का नुकसान होता है, साथ ही जब भी कभी ऐसे निन्दा–वाक्य कान में पड़ते हैं, तभी पुराना झगड़ा फिर याद आ जाता है। भीतरी झगड़े को लौटाना आसान है, पर बाहर फैली निन्दा को लौटाना आसान नहीं।

जब एक–दूसरे की शिकायत बाहर कही जाती है तब सिर्फ आकस्मिक झगड़ा नहीं रह जाता, किन्तु एक–दूसरे के विरुद्ध एक प्रकार से युद्ध की चुनौती हो जाती है। इसका अर्थ हो जाता है कि एक–दूसरे को पछाड़ने के लिए लोकमत आदि का बल संचित करना । इससे एक प्रकार का स्थाई द्वेष पैदा हो जाता है, जो कि दांपत्य जीवन को खोखला कर देता है।

बैठना–उठना, आना–जाना, मिलना–जुलना, किसी विशेष कार्य में या क्रीड़ा–विनोद में लगाना आदि की दोनों को पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। हाँ इस स्वतंत्रता का उपयोग इस कार्य में ही होना चाहिए कि घर के आवश्यक कार्य या एक–दूसरे की आवश्यक सेवा में न बाधा-पड़ जाए। घर के और परस्पर के आवश्यक कार्य हो जाने पर एक–दूसरे की स्वतंत्रता में बाधा न डालेंगे। घर के आवश्यक कार्य हो जाने पर जितने समय दोनों की रुचि हो दोनों साथ बैठें, अगर किसी एक की रुचि दूसरे काम में लगने की हो तो उसे उसमें लगने दो। ऐसे अवसर पर तुम अकेले ही दिल बहलाने की आदत डालो। रुचि के विरुद्ध एक–दूसरे को बाँधने से प्रतिक्रिया होने लगती है, इससे अरुचि और घृणा बढ़ने लगती है। जब दूसरे में हमें अरुचि और घृणा का पता लगता है, तब हमें प्रेम में संदेह होने लगता है। प्रेम में संदेह होने पर दांपत्य की दुर्दशा किस सीमा तक जाएगी, कह नहीं सकते।

इसके लिए यह जरूरी है कि पत्नी और पति दोनों ही को फुर्सत के समय एकांत में पढ़ने–लिखने की या कला–कौशल की

आदत हो, जिससे एक अगर अपनी रुचि के अनुसार कोई काम करना चाहे तो बाकी दूसरा भी अपनी रुचि के अनुसार कोई काम निकाल ले । इस प्रकार दोनों ही बिना किसी कष्ट के एक–दूसरे की स्वतंत्रता रक्षित रख सकें, इससे किसी को बुरा भी न लगे और प्रेम में ढीलापन न आए।

पति अगर पत्नी का स्त्री–धन ले या पत्नी स्त्री–धन बढ़ाने की दृष्टि से भूषण आदि बनवाने का हठ करे तो इससे दोनों का मन मैला हो जाएगा। एक–दूसरे की इज्जत न करेंगे, प्रेम शिथिल हो जाएगा, इसलिए पैसे के मामले में एक–दूसरे के अधिकारों में गड़बड़ी न करो और न अपने पैसे पर इतना मोह रक्खो कि उसके आगे प्रेम या अन्य दांपत्य–सुख गौण मालूम होने लगें।

प्रेम या विलास में भूलकर दोनों या कोई एक जब अपना कर्तव्य पूरा नहीं करते या किसी दूसरे पर बोझ लादते हैं, तब थोड़े ही दिनों में प्रेम या विलास नष्ट हो जाता है। यद्यपि दांपत्य में जीवन की अभिन्नता होती है, पति और पत्नी एक ही जीवन के दो अङ्ग बन जाते हैं फिर भी जैसे एक अङ्ग का कार्य यदि दूसरे अङ्ग से लिया जाए तो एक अङ्ग अति भार के कारण और दूसरा अक्रियता के कारण रुग्ण हो जाएगा और इससे सारे शरीर को कष्ट उठाना पड़ेगा। इसी प्रकार दांपत्य का शरीर भी कष्ट में जाता है, इसलिए प्रेम में भूलकर अपना कर्तव्य मत छोड़ो। ''काम प्यारा है, चाम नहीं'' इस कहावत में काफी सच्चाई है, इसलिए अर्थ और काम दोनों जीवार्थो का समन्वय जरूरी है।

अपने में सौन्दर्य कला, ख्याति आदि अधिक हो, तो भी इसका घमण्ड नहीं करना चाहिए। एक–दूसरे को नीचा दिखाने की भावना तो होनी ही नहीं चाहिए। अगर कभी अपनी तारीफ भी हो तो उसमें अपने व्यक्तित्व की तारीफ न हो, किन्तु अपने दांपत्य की तारीफ हो इस ढङ्ग से करना चाहिए।

अहंकार बाहर वालों के साथ भी बुरा है, फिर पति–पत्नी

आपस में ही अहंकार का प्रदर्शन करें यह दांपत्य दृष्टि से और भी बुरा है। दांपत्य तो पति-पत्नी के अद्वैत पर खड़ा होता है और अहंकार से तो द्वेष पैदा होता है इसलिए अहंकार को छोड़कर एक-दूसरे के यथायोग्य प्रशंसक होना उचित है। समय पर एक दूसरे की प्रशंसा करने से प्रेम में ताजगी आती है। उसका मिठास बढ़ जाता है।

दुनिया में एक से एक बढ़कर पुरुष और एक से एक बढ़कर नारियाँ हैं। हो सकता है कि उनमें से किसी के साथ अगर तुम्हारा विवाह हुआ होता तो शायद आज की अपेक्षा तुम्हारा दांपत्य जीवन अधिक आनंददायक या सुखमय हुआ होता, पर जो नहीं हुआ, उसे असंभाव्य ही समझ लो, उसका ध्यान भी मत करो। मैं कैसे आदमी के पाले पड़ गई, या में कैसी स्त्री के पाले पड़ गया, इत्यादि बातें बेकार तो हैं ही साथ ही एक दूसरे से मन फाड़ देने वाली हैं।

जीवन को बोझिल या कटीला बनाकर असह्य मत बनाओ। मन की निर्बलता, असहिष्णुता, विलासिता और अहंकार के कारण जीवन असह्य बन जाता है। इससे पग-पग पर क्रोध, रिसाना, झक-झक, रोना, हाय-हाय करना, बात-बात में असंतोष प्रगट करना आदि बातें होने लगती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जो बाहरी दुःख सरलता से सहा जा सकता है, जिसमें दूसरों की खुशी से सेवा और सहानुभूति मिल सकती है- वह दुःख दस गुणा बढ़ जाता है और सेवा, सहानुभूति या तो दुर्लभ हो जाती है अथवा मिलती है तो देने वाले को जल्दी ही थका देती है, इसलिए अपने मन को खूब मजबूत बनाओ, प्रसन्न-मुख रहो, कोई कष्ट हो तो थोड़े में उचित समय पर ही प्रकट करो, उसके सहने पर बहादुरी दिखाओ, अपना दुःख दूसरे पर जबर्दस्ती न उँड़ेलो, अन्यथा इसका परिणाम यह होगा कि साथी साथ से बच निकलने की कोशिश करेगा। पति घर में आए और उसके पहिले उसे यह चिंता लग जाए कि न जाने

आज 'भवानी' के साथ कैसे पाला पड़ेगा, उसकी क्या-क्या शिकायतें सुनने को मिलेंगी तो समझना चाहिए कि पत्नी ने अपना जीवन असह्य बना डाला है। प्रेम कितना भी गहरा हो, उसने प्रेम की जड़ में घातक कीड़ा लगा दिया है जो हर समय उसे कुतरता ही रहता है, ऐसी हालत में पानी देते रहने पर भी प्रेम का वृक्ष सूख जाता है।

इसी प्रकार पति के आने से पहिले ही अगर पत्नी को यह चिंता हो जाए कि न जाने आज 'देवता' क्या बकझक करेंगे आदि तो कहना चाहिए कि पति ने अपना जीवन असह्य बना डाला है और उसने प्रेम के वृक्ष को सुखाने के निमित्त बना दिया है।

महीनों में होने वाली किसी खास घटना की बात दूसरी है पर साधारण नियम यह होना चाहिए कि मिलते समय दूसरे को खुशी ही हो, आपका प्रसन्न मुख देखकर वह अपना भी थोड़ा-बहुत दुःख भूल जाए, न कि प्रसन्न वातावरण में मनहूसी आ जाए। चिड़-चिड़ापन, तुनुक-मिजाजी आदि से हम अपना दुख भीतर से बढ़ाते ही हैं, साथ ही सेवा-सहानुभूति आदि खोकर उसे बाहर से भी बढ़ा लेते हैं। इसलिए अपने जीवन को ऐसा बनाओ, जिससे उसका बोझ दूसरे पर कम से कम पड़े और किसी को उससे चोट न पहुँचे।

परिपाटी के तौर पर जो प्रतिज्ञाऐं धर्म पुरोहित उच्चारण कर देते हैं, उनका व्यावहारिक-जीवन में नाम भी नहीं रहता। दांपत्य-जीवन एक दूसरे के लिए बोझ बन जाता है। इसका कोई बाह्य कारण नहीं। अपितु पति-पत्नी दोनों के ही परस्पर व्यवहार आचरणों में विकृति पैदा होने पर ही अक्सर ऐसा होता है। यदि इन छोटी-छोटी बातों में सुधार कर लिया जाए तो दांपत्य-जीवन परस्पर सुख-शांति, आनंद का केंद्र बन जाए।

दांपत्य-जीवन की सुख-समृद्धि एवं शांति के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि व्यवहार में एक दूसरे की भावनाओं का

ध्यान रक्खें। एक मोटा–सा सिद्धांत है कि ''मनुष्य दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करे, जैसा वह स्वयं के लिए चाहता है।'' पति–पत्नी भी सदैव एक दूसरे की भावनाओं, विश्वासों का ध्यान रखें। किन्तु देखा जाता है कि अधिकाँश लोग अपनी भावना, विचारों में इतना खो जाते हैं कि दूसरे के विचारों, भावों का कुछ भी ध्यान नहीं रखा जाता। वे उन्हें निर्दयता के साथ कुचल भी देते हैं। इस तरह दोनों की एकता, सहयोग के स्थान पर असंतोष का उदय हो जाता है। अपनी इच्छानुसार पत्नी को जबर्दस्ती किसी काम के लिए मजबूर करना, उसकी इच्छा न होते हुए भी दबाव डालना, पति के प्रति पत्नी के मन में असंतोष की आग पैदा करता है। इसी तरह कई स्त्रियाँ अपने पति के स्वभाव, रुचि, आदेशों का ध्यान न रखकर अपनी छोटी–छोटी बातों में ही उन्हें उलझाए रखना चाहती हैं। फलतः उन लोगों को विवाह एक बोझ–सा लगने लगता है। दांपत्य जीवन के प्रति उन्हें घृणा, असंतोष होने लगता है और यही असंतोष उनके परस्पर के व्यवहार में प्रकट होकर दांपत्य–जीवन को विषाक्त बना देता है। यदि किसी की मानसिक स्थिति ठीक न हो तो परस्पर लड़ाई–झगड़े होने लगते हैं। एक दूसरे पर आरोप–प्रत्यारोप करते रहते हैं।

पति–पत्नी को सदैव एक दूसरे के भावों, विचारों एवं स्वतंत्र अस्तित्व का ध्यान रखकर व्यवहार करना, दांपत्य–जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है। इसी के अभाव में आज–कल दांपत्य–जीवन एक अशांति का केंद्र बन गया है। पति की इच्छा न होते हुए, साथ ही आर्थिक स्थिति भी उपयुक्त न होने पर स्त्रियों की बड़े–बड़े मूल्य की साड़ियाँ, सौंदर्य–प्रसाधन, सिनेमा आदि की माँग पतियों के लिए असंतोष का कारण बन जाती है। इसी तरह पति का स्वेच्छाचार भी दांपत्य–जीवन की अशांति के लिए कम जिम्मेदार नहीं है। यही कारण है कि कोई घर ऐसा नहीं दीखता, जहाँ स्त्री–पुरुषों में आपस में नाराजगी, असंतोष न दिखाई देता हो।

परस्पर एक दूसरे की भावनात्मक स्वतंत्रता का ध्यान न रखने में एक मुख्य कारण अशिक्षा भी है। यह कमी अधिकतर स्त्रियों में पाई जाती है। पर्याप्त शिक्षा–दीक्षा के अभाव के कारण भी मानसिक विकास नहीं होता जिसके कारण एक दूसरे की भावनाओं, व्यावहारिक जीवन की बातों के बारे में मनुष्य को जानकारी नहीं मिलती। इसके निवारण के लिए प्रत्येक पुरुष को कुछ न कुछ समय निकालकर पत्नी को पढ़ाने, उसका ज्ञान बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जीवन–साथी का समकक्ष होना आवश्यक है। अपने ज्ञान, बुद्धि, विकास एवं कल्याण के लिए भी अन्य आवश्यक कार्यों की तरह ही प्रयत्न करना आवश्यक है, तभी वह जीवन में सहयोग, एकता, सामंजस्य का आधार बन सकती है, किन्तु देखा जाता है कि अधिकांश लोग इसमें दिलचस्पी नहीं लेते। मन, बुद्धि के विकास के अभाव में दांपत्य–जीवन सुखी और समृद्ध नहीं बन सकता।

योग्य होकर भी एक दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखते हुए भी कभी–कभी स्वभावत: ऐसा व्यवहार हो जाता है जो पति–पत्नी में से एक दूसरे को अखरने लगता है। ऐसी स्थिति में किसी भी एक पक्ष को क्षमाशीलता, सहिष्णुता का परिचय देकर विक्षोभ उत्पन्न न होने देने का प्रयत्न करना आवश्यक है। साथ ही एक दूसरे पक्ष को भी अपनी भूल महसूस कर क्षमा माँगकर परस्पर मनों को साफ रखना चाहिए। अन्यथा परस्पर मनो–मालिन्य बढ़ जाता है और दांपत्य–जीवन में कटुता पैदा हो जाती है। महात्मा सुकरात, टालस्टाय जैसे महापुरुषों ने अपनी फूहड़, लड़ाकू स्त्री को सहनशीलता, क्षमा, उदारता के साथ जीवन में निवाहा था।

स्त्रियाँ तो बेचारी सदा से ही अपने पतियों के कटु स्वभाव, व्यवहार निर्दयता, स्वेच्छाचार को भी सहन करके दांपत्य–जीवन की गाड़ी को चलाने में योग देती रही हैं। भारतीय–नारी का महान आदर्श इसी त्याग, सहिष्णुता और पतिव्रत–धर्म से निर्मित रहा है। पति–पत्नी में से जब किसी एक में भी कोई स्वाभाविक कमजोरी

दीखती हो तो उसका सहनशीलता के द्वारा निराकरण करके गृहस्थ की गाड़ी को चलाने में पूरा–पूरा प्रयत्न करते रहना आवश्यक है।

पति–पत्नी दोनों का जीवन एक सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों में अभिन्नता है, एक्य है। भारतीय संस्कृति में तो पुरुष और स्त्री को आधा–आधा अङ्ग मानकर एक शरीर की व्याख्या की गई है, जिससे पुरुष को अर्द्ध–नारीश्वर तथा स्त्री को अर्द्धांगिनी कहा गया है। दांपत्य जीवन स्त्री पुरुष की अनन्यता का गठबंधन है अतः परस्पर किसी तरह का दुराव, छिपाव, दिखावा, बनावटी व्यवहार करना, परस्पर अविश्वास, एक दूसरे के प्रति घृणा को जन्म देता है और इसी से दांपत्य जीवन नष्ट–भ्रष्ट हो जाते हैं। अपनी प्रत्येक चेष्टा में स्पष्टता, दुराव–छिपाव का अभाव रखकर अभिन्नता प्रकट करते हुए पति–पत्नी को एक दूसरे का विश्वास, मानसिक एकता प्राप्त करनी चाहिए। वैसे जहाँ तक बने, प्रत्येक व्यक्ति को अपने बाह्य जीवन में भी रहस्य, छल, बनाव, दिखावे से बचना चाहिए। क्योंकि इस बाहरी व्यवहार को देखकर भी पति–पत्नी एक दूसरे पर संदेह करने लगते हैं। वे सोचते हैं–"हो सकता है, यह व्यवहार हमसे किया जा रहा हो" और संदेह की भूल–भुलैया में ही अनेकों का जीवन क्लिष्ट, उलझा हुआ, दुरूह बन जाता है।

पति–पत्नी दोनों अपने मानसिक क्षेत्र में बहुत बड़ा कुटुम्ब होते हैं। अपनी मानसिक आवश्यकताओं के आधार पर पति अपनी पत्नी से ही विभिन्न समय में सलाहकार की तरह मंत्री की सी योग्यता, भोजन करते समय–माँ की वात्सल्यता, आत्म–सेवा के लिए–आज्ञा पालक नौकर, जीवन–रथ में एक अभिन्न मित्र, गृहणी, रमणी आदि की आकांक्षा रखता है। इसी तरह पत्नी भी पति से जीवन निर्वाह के क्षेत्र में माँ–बाप, दुःख–दर्द में अभिन्न साथी, कल्याण और उन्नति के लिए सद्‌गुरु, कामनाओं की तृप्ति के लिए भर्तार, सुरक्षा संरक्षण के लिए भाई आदि के व्यवहार की अपेक्षा रखती है। जब परस्पर मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति

नहीं होती है तो एक दूसरे में असंतोष, अशांति पैदा हो जाती है, जिससे दांपत्य–जीवन में विकृति पैदा हो जाती है।

एक दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखते हुए, एक दूसरे की योग्यता वृद्धि, खासकर पुरुषों द्वारा स्त्रियों के ज्ञानवर्धन में योग देकर, परस्पर क्षमाशीलता, उदारता, सहिष्णुता, अभिन्नता, एक दूसरे की मानसिक तृप्ति करते हुए दांपत्य–जीवन को सुखी, समृद्ध बनाया जा सकता है। अधिकतर इसके लिए पुरुषों को ही अधिक प्रयत्न करना आवश्यक है। वे अपने प्रयत्न और व्यवहार से गृहस्थ–जीवन की काया पलट कर सकते हैं। अपने सुधार के साथ ही स्त्रियों की शिक्षा–दीक्षा, ज्ञान–वृद्धि, उनके कल्याण के लिए हार्दिक प्रयत्न करके दांपत्य–जीवन को सफल बनाया जा सकता है। धैर्य और विवेक के साथ एक दूसरे को समझते हुए स्वभाव, व्यवहार में परिवर्तन करके ही दांपत्य–जीवन को सुख–शांति मय बनाया जा सकता है।

माँ की ममता और पिता का प्यार कन्याओं को उनके विवाह के पूर्व तक ही मिल पाता है। बाद में उन्हें ससुराल की चहारदीवारी में जीवन गुजारना पड़ता है। अतः उनके माता–पिता अपनी निगाहों के सामने उन्हें आराम देने के उद्देश्य से काम कम कराते हैं। विवाह के बाद में भी बेटी को उसके पति के साथ सुखी जीवन व्यतीत करने की इच्छा रखते हैं। शायद ही ऐसे कोई माँ–बाप होंगे जो अपनी बेटी को दुःखी देखना चाहते हों। किन्तु वे उसकी दुःखी कहानी सुनकर दुःखी होते हैं तब उनकी पहिले की कल्पना अधूरी रह जाती है। वे बेटी के भाग्य को कोसते रहते हैं। ससुराल पक्ष वालों की इच्छा बहू से अधिक काम और पिता पक्ष वालों की इच्छा बेटी को आराम देने की रहती है। इन दोनों विपरीत बातों का साम्य नहीं हो पाता। दोनों पक्षों में इस कारण कटुता की वृद्धि होने लगती है। बात बढ़ जाने पर कभी–कभी संबंध विच्छेद हो जाने के संकट तक बात पहुँच जाती है।

दोनों पक्षों की इन इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए कन्या को

सफल गृहस्थी की योग्यता सिद्ध करनी पड़ती है । इसके अभाव में स्वर्गीय सुखमय जीवन नारकीय दु:खों में व्यतीत होने लगता है । ऐसे समय पर लड़की की शिक्षा, उसके कुल, उसका सौंदर्य, मधुरता सभी निरर्थक हो जाते हैं । चूँकि नारी गृह लक्ष्मी होती है और यदि इ स क्षेत्र में ही वह असफल रहे तो यह उसके गौरव के विरुद्ध भी है । यही पारिवारिक विवाद का लघु रूप बाद में विकराल विघटन तक फैल जाता है । अनेक प्रकार के हृदय विदारक तानों के साथ कठिनाइयों की शुरूआत हो जाती है । नव–विवाहिता बहू का किताबी ज्ञान एवं रूप–लावण्य कुछ काम नहीं आता। वे इस प्रवाह में ढह जाते हैं।

लड़कियाँ भी विवाहित जीवन में दांपत्य सुख की इच्छा रखती हैं, किन्तु उनकी यह इच्छा भी तब मृगतृष्णा बनकर रह जाती है, जब गृहस्थी की अयोग्यता में तानों के साथ दु:खों और पीड़ाओं का आरंभ होता है। अनेक कुंठाओं से भरा उसका जीवन नीरस और भार स्वरूप बनकर रह जाता है। उसके व्यक्तिगत जीवन में अंतर्द्वन्द्व और पारिवारिक संबंधों में संघर्ष के दौर चलने लगते हैं। तब वह समझ पाती है कि गृहस्थी के कार्यों की सुव्यवस्था कर लेना तलवार की धार पर चलने के बराबर है। ऐसे समय में उसे यह समझते देर नहीं लगती कि यदि इन कार्यों का प्रशिक्षण बचपन में ही मायके में प्राप्त कर लिया होता तो वर्तमान जीवन कल्पनाओं के अनुरूप साकार हो जाता ।

किन्तु लड़की बचपन में अबोध होती हैं, उसे अपने कर्तव्यों का भान नहीं होता। वह मजा–मौज भरा जीवन पसंद करती है एवं अपने भाग्य को सराहती है कि सुख–सुविधाओं के जीवन से बढ़कर कौन–सा अच्छा भाग्य हो सकता है। यदि दूरदर्शिता पूर्ण दृष्टि से विचार किया जाए तो लड़की के भावी सुखों को नष्ट करने का दोष स्वयं लड़की पर नहीं उसके माता–पिता पर ही आरोपित होगा, जिसने उसे बचपन से ही लाड़–प्यार में पाला है और गृहस्थी

के किसी भी कार्य का प्रशिक्षण नहीं दिया। उनका यह व्यवहार अदूरदर्शितापूर्ण होता है।

यदि लड़की के माता–पिता विवाह के पूर्व ही उसे गृहस्थी का प्रशिक्षण देते तो ऐसी समस्या नहीं आ सकती। भोजन पकाना, परोसना, बर्तनों की सफाई, खाद्यान्नों की सुरक्षा आदि रसोई से संबंधित कार्य, पारिवारिक सदस्यों तथा मेहमानों के साथ व्यवहार, बोलचाल, उनकी प्रसन्नतानुसार कार्य, बिस्तर, कपड़ों की सुरक्षा, घर की सफाई, बजट में बचत, अपने स्वयं के व्यवहारों में शिष्टता आदि ऐसे ही कार्य हैं जो लड़की को मायके में ही सीख लेना हितकर होता है। इस कर्तव्य से चूकने पर उन्हें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दुःखों को सहना पड़ता है। ससुराल में तिरस्कृत व अपमानित होना पड़ता है। इतना जानते हुए भी अपनी लड़की को गृह कार्य न सिखाना अज्ञानमूलक है। इस पर ध्यान दिया जाना ही माता–पिता का लड़की के प्रति ईमानदारीपूर्ण कर्तव्य है। दांपत्य जीवन की सफलता में ऐसा प्रशिक्षण एक बड़ा आधार सिद्ध होता है।

गृहस्थ की सफलता सघन आत्मीयता पर निर्भर है

विवाहित जीवन में जो हाहाकार हम देख रहे हैं उसका एक प्रधान कारण यह भी है कि पति का कर्तव्य प्रायः उपदेश तक ही समाप्त हो जाता है। उसने भ्रमवश समझ लिया है कि गृहस्थी का सारा बोझ स्त्री के लिए ही है। वह यह भी समझता है कि उसका काम जीवन के इन छोटे–छोटे और रोज पैदा होने वाले सवालों की तरफ ध्यान देना नहीं है, उसका काम बस जिन्दगी की एक चहारदीवारी तैयार कर देना है जिसमें वह और उसकी स्त्री दोनों सुरक्षा का अनुभव कर सकें। वह स्त्री को उसके कर्त्तव्य भी समय–समय पर बताता रहता है और जब उस कर्त्तव्य का पालन करने में वह कभी असमर्थ रह जाती है तो उसका मन खीझ से भर जाता है। वह सोचता है और अक्सर कहता भी है, कि 'मैंने कहाँ से यह झंझट पाली–निर्द्वन्द्व मेरा जीवन था न कोई चिंता न झंझट। वे उमंगे, स्वप्न और वे महत्वाकाँक्षाएँ इस जीवन की कड़ी धूप में नष्ट हो गई। तब वह एक लंबी आह लेता है, किस्मत पर रोता है और उसे अपने ही प्रति, अपनी अक्षमता के प्रति एक संघर्ष और प्रतिहिंसा पैदा होती है और उसका मन अंधकार से भर जाता है।

''यह विष पति तक ही नहीं रह जाता। वह फिर स्त्री के हृदय पर आक्रमण करता है। वहाँ से बच्चों, फिर घर के अन्य प्राणियों में फैल जाता है। फिर पति की भाँति स्त्री भी सोचने लगती है, कैसा कंचन–सा मेरा शरीर था। माँ–बाप ने कभी त्यौरियाँ चढ़ाकर मेरी ओर न देखा, मुझे हाथों–हाथ रखा। आज मैं निरपराध क्या–क्या सहन कर रही हूँ। फिर भी जिंदगी क्या है, रोज की झिकझिक है इससे मौत क्या बुरी होगी? आखिर मैंने उनके लिए क्या नहीं किया? क्या नहीं सहा? फिर भी इतना खिंचाव क्यों है?'' तब उसे लड़कपन के उमंगों से भरे दिन याद आते हैं। ''वह माता–पिता का दुलार, वह बहनों का बहनापा, भाइयों का मृदुल–स्नेह, वह

सहेलियों की चुहल। कैसे देखते–देखते दिन बीत जाते थे। वह सब सपना हो गया। मैंने माता–पिता को छोड़ा, सहेलियों को छोड़ा। मेरा दूसरा अब कौन है।''

''तब यह स्त्री, जो गृह के लिए लक्ष्मी थी और जिसके स्नेह का अमृत पीकर बच्चे घर को स्वर्ग बनाए हुए थे, अपने को भूलने लगती है। तब वह विष जैसी होने लगती है। तब उसमें जातीय वेदना का बोध जाग्रत होता है। तब वह अन्य स्त्रियों से दुःखभरी वाणी में कहती है–'बहन, हम स्त्रियां तो सहने और दुःख झेलने के लिए ही पैदा हुई हैं। हमको सुख कहाँ ? गलत भावों की इस जहरीली आँधी से उसके दिल का दिया बुझ जाता है। जिन्दगी एक बोझ हो जाती है।''

''कोई शैतान अंधविश्वासों में भी सदा के लिए देवता बनकर नहीं रह सकता। देवता बनने के लिए देवता जैसा काम भी करना चाहिए। उसके लिए देवता बनने की कोशिश सच्चाई के साथ करनी चाहिए। मैं यह भी कह दूँ कि मेरे समक्ष कोई मनुष्य से बढ़कर नहीं है। मनुष्यता की अनुभूति ही सच्चे देवत्व की जननी है। गलतियाँ आदमी से होती हैं। इसलिए मैं जिंदगी के कटीले मार्ग पर चल रहे पति या पत्नी से काँटा लग जाने पर उनको अपमानित करने, उनको जानवर मान लेने को तैयार नहीं हूँ । पर मैं मानता हूँ कि सच्चाई और बफादारी तभी निभ सकती है जब हम अपने दिलों को साफ रखें और जो गलती हो जाए, उसे समझने, उसे स्वीकार करने और पश्चाताप करने को तैयार रहें। तभी जीवन का सच्चा सुख और विकास संभव है।''

''अब वह भोलापन कुछ ज्यादा काम न देगा जिसमें पति समझ लेता था कि मैं बुरा हूँ या भला पर मेरी स्त्री को तो देवी होना ही चाहिए और उसका कर्तव्य मेरी सेवा, मेरी पूजा करना ही है। स्त्री का जो भी कर्तव्य हो, जो भी रास्ता हो, आज वह रास्ता हम अपने परंपरा से चले आए हुए अधिकार के बल से उसे नहीं बतला सकते। आज उसे अपनी श्रेणी का, अपने जैसा मनुष्य और अपना सच्चा साथी मानकर ही हम उसके साथ निभ सकते हैं और

उसे निभा सकते हैं। सिर्फ सूखे सिद्धांतों और लाचार–दलीलों को लेकर तिल का ताड़ बनाते रहने से यह न होगा। इसके लिए पति को स्त्री की दुर्बलता नहीं देखनी होगी, अपनी दुर्बलता भी देखनी होगी। उसे अपनी महत्ता का भी स्मरण करना होगा और उस दुर्बलता को दूर करने और अपनी महत्ता को बनाए रखने या उसमें सच्चाई लाने के लिए पूरी चेष्टा करनी होगी। यह जमाना अंध–श्रद्धा का नहीं है। अपनी आँखों में विस्मय और ओठों पर प्रश्न लिए नारी आज उठी है। अब लँगड़ा–लूला, व्यभिचारी, कैसा भी पति पूजा का सिद्धांत चल न सकेगा, इसकी आशा करना सिर्फ अपने को धोखा देना है। फिर सदाचारी, ईमानदार और पत्नी व्रती पति के मुख से तो ऐसी बात क्षण भर को सहन की जा सकती है पर जो स्वयं दुर्बलताओं का गुलाम है उसके मुँह से यह महज परले सिरे का स्वार्थ जैसा लगता है।

इसलिए पति देवता को अपना यह भाव त्याग देना होगा कि वह मूलतः ही अपनी पत्नी का पूज्य है। नारी से तो अब भी मैं यही कहूँगा कि उसका यह भाव रखना उसके लिए कल्याणकारी है पर पति से तो मुझे यही कहना चाहिए कि उसके लिए अपने संबंध में इस तरह का ख्याल रखना उसे चौपट करने वाला और उसे अँधेरी और बदबूदार खाईयों में धकेल देने वाला है। उसे तो जिंदगी का बोझ उठाने में पत्नी से ज्यादा वफादारी का सबूत देना ही अच्छा है। उसे स्त्री में दोष दर्शन की वृत्ति छोड़कर अपने को देखने, परखने और सुधारने की वृत्ति डालनी चाहिए।

यह मनुष्य की बड़ी सामान्य कमजोरी है कि वह दूसरों के बारे में जितनी कठोर कसौटी का इस्तेमाल करता है वह अपने बारे में नहीं । दूसरों की जिंदगी को वह ऊँचे पैमाने से नापना चाहता है और अपनी कमजोरियों के लिए तरह–तरह की सफाई देता है। सामाजिक एवं घरेलू संबंध में गलत फहमी और विषमता पैदा होने का एक बहुत बड़ा कारण यही है । यदि आदमी दूसरों के बारे में भी उतना ही मुलायम और उदार हो जितना वह अपने बारे

में होता है तो हमारी आधी समस्याएँ अपने आप खत्म हो जाएँ। हमारे बीच बहुत–सी कटुता इसीलिए पैदा होती हैं कि दूसरों के दोषों पर हमारी निगाह जरूरत से ज्यादा तेजी के साथ दौड़ती हैं, जबकि अपने दूर से दमकते दीखने वाले दोषों पर भी हम सुनहरी कलई करके लोगों की आँखों में धूल झोंकना चाहते हैं।

दांपत्य जीवन के लिए भी यही बात है। एक रिवाज चल पड़ा है और पतियों ने अपने और अपनी बीबियों के लिए नीति और सदाचार के अलग–अलग पैमाने बना लिए हैं, आचार की जो शिथिलता पति के लिए क्षम्य है वह पत्नी के लिए अक्षम्य है। मनोरंजक बात तो यह है कि सभ्य पुरुष जो दूसरों की बहू–बेटियों की ओर लोलुप–व्यवहार करने को आतुर है, अपनी औरत से सती सावित्री होने की आशा रखता है। यह मनोवृत्ति क्रोध करने योग्य नहीं है, यह दयनीय है।

पतियों के लिए बहुत अच्छा होता यदि वे जल्द से जल्द समझ लें कि इस तरह की हालत अब नहीं चल सकती। सदाचार का एक ही पैमाना दोनों के लिए निभ सकता है–वह ठीक है और वही होना चाहिए. बल्कि पुरुष और पति होने के नाते मैं तो चाहूँगा कि पति अपनी पत्नियों की जाँच की कसौटी में भले ही थोड़ी–बहुत शिथिलता रखें पर अपनी परख में उनको बड़ा बेरहम होना चाहिए। आज तक जो कुछ उन्होंने अपने प्रथागत अधिकार के बल पर पाया है उसे सच्ची शक्ति और चरित्र–बल से प्राप्त करने का दावा करना चाहिए। लाठी और गर्व के बल पर औरतें अब हाँकी नहीं जा सकती।

''इसकी अपेक्षा कि तुम अपनी पत्नी से अधिक आशाएँ करलो, वह ज्यादा अच्छा होगा कि पहले तुम उसके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करो। शांतिमय और प्रेममय गृहस्थ जीवन का सबसे बड़ा रहस्य यह है कि इसमें अपने सुख की अपेक्षा अपने साथी का सुख और हित पहले देखना पड़ता है। अपने हित की रक्षा का सर्वोत्तम तरीका ही एक दूसरे के हित की रक्षा करना है। आत्मदान ही सच्चे सुख की कुंजी है।''

यह कहना अतिशयोक्ति ही होगी कि दांपत्य जीवन स्त्री के

रूपवती होने से सफल हो जाएगा। वस्तुतः विवाहित जीवन में रूप का स्थान, एक सीमा तक होते हुए भी वह बहुत गौण है। यह बिल्कुल संभव है कि नारी के रूपवती न होने या कम रूपवती होने पर भी तुम सुखी हो सकते हो और यह असंभव नहीं कि रूपवती लड़की से विवाह करके भी तुम्हारा जीवन उस अमृत से वंचित ही रह जाए जिसके बिना विवाहित जीवन नरक है। बात यह है कि विवाहित जीवन का सुख काव्य का काल्पनिक आनंद नहीं है। यह इसी लोक में घोर परिश्रम द्वारा एक ऐसे जीवन का निर्माण करने का प्रयत्न है जिसमें नारी और पुरुष एकत्र रहकर और संयुक्त होकर अपनी परिपूर्ण अभिव्यक्ति कर पाते और स्वार्थ एवं परमार्थ का समन्वय करते हैं।

"केवल रूप को देखकर कोई निर्णय मत करो। हो सकता है कि तुम्हारे साथ पढ़ने वाली लड़की ने अपनी शरारत, शोखी और सौंदर्य से तुम्हारे दिमाग पर नशे की तरह अधिकार कर लिया हो। तुम समझते हो कि तुम दोनों दिल से एक–दूसरे को चाहते हैं। तुम्हारा कहना है कि बिना उस लड़की के तुम्हारा जीवन सुखी नहीं हो सकता और तुम दूसरों के साथ शादी करने की बात मन में भी नहीं ला सकते। यह जवानी ऐसी ही चीज है, यह दिलों में बेकरारी पैदा करती है और भविष्य के प्रति बड़ी जल्दबाजी से काम लेती है पर मैं कहूँगा कि जल्दी मत करो, जो ज्वर तुम में उठा है, उसे ठिकाने लगने दो और तब शांति के साथ सोचो कि तुम्हारी मानसिक दशा क्या है। क्या तुम शांति के साथ और निरुद्वेग होकर अपने संबंध में ठीक–ठीक विचार करने की स्थिति में हो ? भावावेश में निर्णय मत करो, वह दोनों के लिए सुखदायी होगा। ऐसे कई उदाहरण दे सकता हूँ जिनमें विवाह के पूर्व लड़का–लड़की दोनों एक–दूसरे को चाहते थे, उनका कहना था कि यह रूपजनित मोह नहीं है हम दिल से प्रेम करते हैं, पर विवाह के बाद वे प्रेम के सपने बहुत जल्द खत्म हो गए। बेचारी स्त्रियाँ अक्सर कर ऐसे मामलों से ज्यादा घाटे का सौदा कर लेती हैं। स्त्रियों के

लिए बहुत जरूरी है कि वे पुरुषों के रूप–जनित आकर्षण को बहुत मूल्य न दें। मैं कहूँगा कि ''जो स्त्री अपने रूप का उपयोग पुरुष को आकर्षित करने में करती हैं, उसके भाग्य में पछताना ही बदा है क्योंकि वह दांपत्य जीवन का आरंभ पुरुष की हलकी वासना को जगाकर करती हैं और जब जीवन के मध्याह्न के बाद यौवन और रूप की दोपहर ढलने लगती है तो रूप लोभी या रूप के पीछे आया हुआ पुरुष विरक्त होने लगता है। जो सहयोग रूप की नींव पर खड़ा किया है और जिसमें आत्म–नियंत्रण, त्याग तथा जीवन के स्थाई तत्व नहीं हैं वह दांपत्य जीवन अधिक दिनों तक चल ही कैसे सकता है ?''

''आधुनिक युवती में पुरुष को आकर्षित करने की प्रवृत्तियाँ अधिक सजग हो रही हैं और उसे इसके लिए अपने को अधिक से अधिक आकर्षक बनाने की चिंता में बहुत समय और शक्ति खर्च करनी पड़ती है। शरीर को जीवन में बहुत प्रधानता मिल गई है और इन सबके कारण रमणी ऊपर आ गई और पनप रही है जब कि 'माता बोझ के नीचे दब गई है, उसका जो फल होना चाहिए था नहीं हुआ है। नारी के स्वतंत्र विकास का दावा मिथ्या के गर्त में डूब गया है और जीवन में सर्वत्र भोग और अधिकार की स्वार्थपूर्ण वासनाएँ जग गई हैं। क्या पुरुष, क्या स्त्री दोनों का स्वाभाविक ओज और स्वाभाविक विकास नष्ट हो गया है लघु आमोद एवं तुच्छ क्रीड़ा–विलास से जीवन पंकिल हो उठा है। उसके मुख मण्डल पर यौवन की क्रांति क्षणस्थायी होती है। प्राण पंगु से मद्यप की भाँति अपने में शिथिल एवं गतिहीन हो रहे हैं।''

अक्सर आजकल रूप–तृष्णा को प्रेम समझ लिया जाता है। रूप–तृष्णा में अधिकार और भोग की लालसा होती है जब प्रेम प्रेमास्पद के लिए अपने सुख और सुविधा का बलिदान करने को तैयार रहता है। सच्चे प्रेम की नींव बाह्य रूप से नहीं, उससे कहीं गहरी होती है और उसके साथ सदा उत्कृष्ट भावना और कर्तव्य तथा कल्याण की इच्छा लगी होती है। इसलिए विवाहित जीवन में

वे लोग अधिक सफल होते हैं जो उदार दृष्टिकोण और कर्तव्य को लेकर चलते हैं। सुनहरे स्वप्नों के जाल जीवन की कठोर वास्तविकता के धक्कों से टूट जाते हैं। क्योंकि पति–पत्नी का जीवन केवल उन्हीं तक नहीं होता और उनको समाज की कठोर परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है उसे जीविका के लिए जो जीवन की समस्त स्थूल आवश्यकताओं में सबसे प्रबल आवश्यकता और शक्ति है, दुनिया के वियावान में काँटों पर चलना पड़ता है और जब पैर काँटों से छलनी हो रहे हों और दिलों को घोर प्रतियोगिता की सर्द हवाएँ शिथिल किए डालती हों, तब प्रेम के कोमल एवम् लुभावने सपने देखते हुए चलना संभव नहीं है।

इसलिए जिसे आजकल प्रेम–विवाह कहा जाता है उसकी अपेक्षा कर्तव्य–विवाह अधिक सफल होता है। पहले में जहाँ आकांक्षाएँ और आशाएँ बहुधा काल्पनिक होती हैं और अतिशयोक्ति की सीमा तक बढ़ी होती हैं वहाँ दूसरे में आदमी वास्तविकता की भूमि पर होता है। जब मैं कर्तव्य की प्रधानता की बात कह रहा हूँ तब मैं प्रेम की श्रेष्ठता को भूला नहीं हूँ । मैं मानता हूँ कि दांपत्य–जीवन, क्या संपूर्ण मानव–जीवन, संपूर्ण समाज–जीवन प्रेम के बिना आत्मा रहित शरीर के समान है, इसके बिना सब कुछ जड़, स्फूर्तिहीन और चेतना–रहित है। जगत में जो कुछ है प्रेम का ही विस्तार है, उसी की प्रकृति और विकृति है पर मेरा कहना इतना ही है कि जहाँ प्रेम उद्वेग से धुँधला और स्वार्थ से पंकिल है वहाँ वह विकृत होकर विष का काम करता है। वस्तुतः वह प्रेम होता नहीं। प्रेम सब कुछ देकर भी सदा अपने में अपूर्ण होता है। पर इतनी बारीकी में जाना सबके लिए संभव नहीं।

अतः मैं इसे यों कहूँगा कि जो प्रेम त्याग से नम्र नहीं है और विवेक से प्रकाशित नहीं है उसे प्रेम समझने की भूल मत करो। सच्चा प्रेम सदैव विवेक से परिष्कृत होता है। प्रेम और विवेक दोनों का उपयुक्त सामंजस्य करके चलना ही गृहस्थ जीवन और मानव की परिपूर्णता का साधन है।

इसलिए जहाँ जीवन संगी के चुनाव का सवाल है वहाँ हृदय और मस्तिष्क दोनों का संतुलन करके और शांत होकर, पूरी गंभीरता के साथ विचार करना चाहिए। तुम्हें न केवल अपने वर्तमान का वरन् भविष्य का भी ध्यान रखना चाहिए। अपने जीवन के लिए तुम जिम्मेदार हो, चुनाव का अंतिम निर्णय तुम पर निर्भर करता है। तुम सोचो और निर्णय करो, पर यह कुछ बुरा न होगा कि तुम अपने निर्णय में उन बुजुर्गों को भी शरीक होने दो जिन्होंने दुनिया देखी है और जो जीवन के उतार–चढ़ाव के बीच से गुजरे हैं।

"मैं यह नहीं कहता कि रूप का कोई मूल्य नहीं है पर मैं इतना जरूर कहता हूँ कि जीवन के संघर्ष में इस हलकी और क्षण स्थाई चीज के भरोसे तुम ज्यादा सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। उसके लिए कहीं ज्यादा ठोस चीज की जरूरत है। रूप–लिप्सा में अंधे बनकर दूसरी ज्यादा जरूरी चीजों की तरफ से मुँह मत मोड़ो। यह रूप पहले तो संयोग से मिला हुआ पदार्थ है। यानी इसके प्राप्त करने में लड़की ने कोई परिश्रम नहीं किया। इससे उसके गुणों का या योग्यता का कोई संबंध नहीं है। इससे उसके कुसंस्कारों का भी कुछ पता नहीं चलता। तब इस चीज के प्रति तुम्हारी इतनी ललचाई नजर क्यों है ? क्यों नहीं लड़की में पहले शील, गुण, स्वभाव की अच्छाई की माँग की जाती है ? मधुर बोली, सहनशील स्वभाव, परिश्रमशीलता, संतोष वृत्ति, उदार मानस ये वे चीजें हैं जिस के कारण नारी गृहलक्ष्मी है। पर आज इन बातों पर कौन ध्यान देता है ? आजकल का युवक पति तो स्त्री में चटक–मटक, रूप और यौवन का नशे से पूर्ण जोड़ चाहता है और तभी गृह इतने सूने तथा निरानंद हो रहे हैं।"

यद्यपि जिन्दगी मामूली व्यापारिक अर्थ में सौदा नहीं है, पर व्यापक और श्रेष्ठ अर्थ में यह एक कठिन सौदा है।

गृहस्थ जीवन की संपूर्ण आधार शिला आत्मीयता है। बच्चे रूखा–सूखा खाते हैं पर माता–पिता का साथ छोड़कर नहीं जाते।

अपने सुख, अपनी सुविधाएँ विस्मृत कर स्त्री दिन–रात अपने पति, अपने बच्चों की सेवा, टहल करती है। एक ही भूख, एक ही प्यास–ममत्व, एक ही बंधन–आत्मीयता ही है जो कष्ट की स्थिति में भी मनुष्य, मनुष्य को जोड़कर रखती है। पारस्परिक प्रेम, अपनत्व, स्नेह, सौहार्द्र, प्यार, दुलार पाकर निरे अभाव ग्रस्त परिवारों से भी लोग संबंध विच्छेद नहीं करना चाहते, पर आत्मीयता के अभाव में साधन संपन्न व्यक्ति भी परस्पर टकराते और भीतर ही भीतर घुला करते हैं।

ऐसी शिकायतें आए दिन सुनने को मिलती रहती हैं "हम भाइयों–भाइयों के बीच नहीं बनती", हमारा दांपत्य–जीवन बड़ा दु:खी है, "हमारे घर में ऐसा कलह छाया रहता है कि घर की चहारदीवारी में दम घुटता रहता है।" ऐसी शिकायतें आज आम हो गई हैं। उन परिस्थितियों की कल्पना करते हैं, जिनमें ऐसे लोग रह रहे होंगे तो इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि आज का समाज नि:संदेह बहुत दु:खी है और उसका कुछ उपचार भी अवश्य होना चाहिए।

क्या कोई बाहरी हस्तक्षेप कारगर हो सकता है ? नहीं। आपकी यह समस्या किसी बिचौलिए से ठीक होने वाली नहीं। मनोवृत्तियाँ विकृत हो रही हों तो कोई देवता भी उस स्थिति को ठीक नहीं कर सकता। किसी अन्य से शिकायत करने की अपेक्षा अपने आप में ही यदि उस कारण को ढूँढ़ा जाए जो सारा उत्पात उत्पन्न करता है और उसे दूर किया जाए तब संबंध सुधार की आशा भी बढ़ जाती है और उसके परिणाम भी कुछ अधिक प्रभावशाली हो सकते हैं।

दो भाइयों की कलह–ग्रस्त स्थिति जिसमें एक भाई अपने सगे भाई की जान लेने पर उतारू हो जाता है और दूसरी ओर भाई की कष्ट–ग्रस्तता के समाचार से दूसरा भाई मर्माहत हो जाता है और उसकी विपत्ति दूर करने के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने की तैयारी करता है, ये दोनों परिस्थितियाँ जमीन आसमान जैसे अंतर की हैं।

इस अंतर पर विचार करने से इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन दोनों स्थितियों में आत्मीयता प्रगाढ़ होना और आत्मीयता न होना ये दो ही कारण हो सकते हैं अन्यथा धन–दौलत किसी के संबंध खराब नहीं कर सकते। बटवारे का झगड़ा तब होता है जब स्वार्थ पैदा होता है । न्यायपूर्वक लोग उपभोग करते रहें तो ऐसी लड़ाई ही क्यों हो ? अपने आपको बड़ा मानने और दूसरे को नीचा मानने की अमानवीय प्रकृति ही कलह उत्पन्न करती है । एक मनुष्य यदि दूसरे मनुष्य की स्थिति भी ठीक अपनी ही जैसी अनुभव करे तो फिर झगड़ा क्यों हो और संबंध खराब भी न हों।

कमी कुछ न कुछ प्रत्येक व्यक्ति में होती है। जो बेटा दिन–भर खेतों में काम करता है, कठिनाइयों से संघर्ष करते रहने के कारण संभव है वह कुछ तीखी आवाज में बोलता हो, माँ उसे अपने बेटे का गुण मानती है, दुर्गुण नहीं। पत्नी यदि अपनी सेवाओं के बदले कुछ अधिकार चाहती हो तो इसे उसकी स्वाभाविक वृत्ति मानना चाहिए, न कि उसका दोष। इन स्वाभाविकताओं को माँ की दृष्टि से देखा जाए और उसके अनुरूप ही अपने आपको ढाल लिया जाए तो इसमें हर्ज ही क्या है। सेवा के बदले बड़ाई, परिश्रम के बदले प्यार देना मनुष्य का धर्म है। इन सद्गुणों के बीच यदि कोई कटु लगने वाली बात जान पड़ती हो तो उसकी उपेक्षा ऐसे ही की जानी चाहिए जैसे नीम के गुणों के बीच उसकी कड़वाहट की उपेक्षा कर दी जाती है।

मानवीय अधिकारों की भूख सभी को होती है। बच्चा प्रातः काल से लेकर सायंकाल तक तोड़–फोड़, वस्तु–खराबी और खर्च ही करता है, इतना करते हुए भी वह माता–पिता से बराबर प्रेम और स्नेह का अधिकार रखता है। बच्चे को वह प्यार मिलता भी है क्योंकि यह उसका मानवीय अधिकार है। बच्चे की तरह बड़ों के श्रम की प्रशंसा, उनके कार्य में सहयोग, अभावों की पूर्ति भी ऐसे ही मानवीय अधिकारों के अंतर्गत आती है। इसे पूरा करने में जब लोग कंजूसी दिखाते हैं तो स्वभावंतः उसकी प्रतिक्रिया विपरीत

होती है और आत्मीय–संबंधों में विकृति आती है।

त्याग और उदारता का मानवीय अधिकार केवल वे लोग ही नहीं माँगते जो अधिक उपयोगी होते हैं अथवा जिनके पास किसी प्रकार की सत्ता होती है, वरन् यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि उसकी अपेक्षा समाज का हर व्यक्ति करता है। यह कहा जा सकता है कि जो कोई काम न आता हो या अनुपयोगी हो, उसके प्रति परोपकार से क्या लाभ। पर बात ऐसी नहीं। त्याग और उदारता किसी भी व्यक्ति के साथ बरती जाए तो यह कभी निष्प्रभावी नहीं जाती। इतिहास साक्षी है कि इस उदारता के द्वारा कई पातकी व्यक्तियों को भी सुधारा जा सका है। वाल्मीकि और अंगुलिमाल जैसे हिंसक प्रवृति के व्यक्तियों को भी मनुष्य की दया, क्षमा, त्याग और उदारता ने बदल कर रख दिया तो परिवार की छोटी–छोटी कमियों वाले व्यक्तियों को बदलना और भी आसान होना चाहिए।

माँ का हृदय बड़ा विशाल कहा जाता है क्योंकि वह लायक और नालायक दोनों बेटों को एक आँख, एक भावना से देखती है। अच्छे चरित्रवान और सुशील बेटे के लिए जितनी मुहब्बत उसके हृदय में होती है, नालायक बेटे के लिए उससे कम नहीं। कुछ अंशों में तो वह उसका और भी अधिक हितचिंतन करती है। माँ की तरह हम सब व्यक्तियों का हृदय उदार हो सकता है। यदि हम अपने आपको अन्य लोगों की अपेक्षा कुछ बड़ा समझदार और सुधरा हुआ समझते हैं तो अयोग्य को भी आदर देने की योग्यता हम में होनी ही चाहिए।

स्वार्थ वृत्ति का उन्मूलन, त्याग का परिष्कार आत्मीयता बढ़ाने की दो धाराऐं हैं। ये दो स्वर्ण–सूत्र हैं जिन्हें अपनाकर खोए हुए संबंधों को सुधारा जा सकता है, सुधरे हुए संबंधों को प्रगाढ़ बनाया जा सकता है। पारिवारिक जीवन में यदि समता, सौमनस्य, सुव्यवस्था, सुख और शांति बनाए रखनी हो तो इन बातों का पाठ प्रत्येक सदस्य को पढ़ना–पढ़ाना ही पड़ेगा।

भावनाओं को ऊँचे उठाना कुछ कठिन बात नहीं। इससे आपको घाटा हो ऐसी बात नहीं। अपनी ओर से उदारता व्यक्त

करने वाला व्यक्ति बाहर से भले हीं कुछ घाटे में जान पड़े पर यदि ये तत्व उसके जीवन में ओत–प्रोत हो जाते हैं तो उसके जीवन में अभूतपूर्व आत्म–संतोष का उभार देखा जा सकता है। आध्यात्मिक ही नहीं, अनेक भौतिक लाभों से भी वह लाभान्वित होता है।

पारिवारिक संगठन के लिए आत्मीयता अनिवार्य शर्त है, उसे पूरा कर लिया जाए तो सुख और संपत्ति का इस गृहस्थ में कोई अभाव नहीं रह सकता। पर यह क्रिया बाह्य संदर्भ से आनी चाहिए। आत्मीयता हमारी भावनाओं का प्रसार है। हम अपनी धर्मपत्नी के प्रति, अपने भाई–बहिनों और बच्चों के प्रति जैसी भावनाएँ रखते हैं उसी के अनुरूप आत्म–संबंध भी ढीले या प्रगाढ़ होते हैं । अच्छी भावनाओं का अच्छा प्रतिफल तुरंत देखा जा सकता है। जबकि दुर्भावनाओं से पारस्परिक संबंध और भी खराब होते हैं।

पारिवारिक संगठन गृहस्थ की उन्नति का मेरुदण्ड है। वह जितना सुदृढ़ होगा, व्यक्ति, समाज और राष्ट्र भी उतना ही समुन्नत होगा। मनुष्य जीवन की सुख–सुविधाएँ भी उसी में सन्निहित हैं। हमारे पास धन और साधन प्रचुर मात्रा में न हों तो कुछ हर्ज नहीं। बहुत अच्छा मकान, बहुत ऊँची शिक्षा न हो तो भी काम चल सकता है, पर पारिवारिक सौजन्य के बिना हम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। सुखी गृहस्थ के लिए भाई–भाई में अटूट प्रेम, पिता–पुत्र में गहन आत्मीयता, पति–पत्नी के बीच पूर्ण एकता और विश्वास होना आवश्यक है। इसे उपलब्ध कर सकें तो स्वर्ग इसी धरती में है, इसे ढूँढने के लिए कहीं अन्यत्र जाने की आवश्यकता न होगी।

हम अपने स्वर्ग अथवा नरक का निर्माण इसी धरती पर, स्वयं ही करते हैं यह तथ्य भली भाँति समझ लेना चाहिए। तभी गृहस्थ–जीवन में स्वर्ग के अवतरण की जिम्मेदारी को समझा और उसके अनुसार आचरण किया जा सकेगा।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा